हिन्दीपर फ़ारसीका प्रभाव

लेखक

पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी
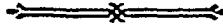
प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

सितम्बर, १९३७

प्रकाशक—
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,
प्रयाग

प्रथम संस्करण

मुद्रक—सत्यभक्त
दि फाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग कॉटेज,
चन्द्रलोक—इलाहाबाद

भूमिका

"हिन्दी साहित्यपर फारसीका प्रभाव" कलकत्ता विश्वविद्यालयकी हिन्दीकी एम० ए० परीक्षाका विषय था। परन्तु इस विषयपर कोई पुस्तक न थी, जिससे परीक्षकों और पाठकों सबको असुभीता होता था। इसलिये कलकत्ता विश्वविद्यालयके संस्कृत और हिन्दीके व्याख्याता महामहोपाध्याय पण्डित सकलनारायण शर्माके आग्रहसे यह पुस्तक लिखकर स० १६८६ में गंगादशहराके दिन पूरी कर दी गयी थी। परन्तु विश्वविद्यालयसे इस रूपमें पुस्तक प्रकाशित नहीं हो सकती, इसलिये अङ्गरेजीमें इसका रूपान्तर होना चाहिये। मित्रवर गणिताचार्य स्वर्गीय डॉ० गणेशप्रसाद, एम० ए०, डी० एस-सी० के इस परामर्शके अनुसार इसका अङ्गरेजी उल्था किया गया, जो पुस्तक-रूपमें छपकर युनिवर्सिटीसे प्रकाशित हो चुका है।

इस पुस्तकके लिखनेमें जिन सज्जनोंके सुझावों और साहाय्यपूर्ण सम्मतिके लिये लेखक कृतज्ञ है, वे हैं स्थानीय इस्लामिया कॉलेजके प्रोफेसर मौलाना ए० एफ० एम० अब्दुलकादिर साहब एम० ए० और स्थानीय आर्यसमाजके पं० अयोध्याप्रसाद बी० ए०। यदि मौलाना साहबकी इस कामसे इतनी दिलचस्पी न होती, तो पुस्तक विशेष लाभदायक न हो सकती।

पुस्तक तैयार करनेमें जिन ग्रन्थोंसे सहायता ली गयी है, उनकी नामावली अन्यत्र दी गयी है। परन्तु सबसे अधिक सहायता शम्सुलउलेमा

मौलाना मुहम्मद हुसैन साहब "आजाद" मरहूमकी दो लासानी उर्दू किताबों "आबे-हयात" और "सखुनदाने फारस" तथा स्वर्गीय पण्डित पद्मसिंहशर्माकी "हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी" मे मिली है। अङ्गरेज़ी संस्करण निकलनेके कुछ ही दिन पहले पण्डितजीकी पुस्तक देखनेमें आयी थी, इसलिये इसका विशेष उपयोग उसमे नहीं हो सका था। इस हिन्दी संस्करणमें उससे बहुतसे अवतरण दिये गये हैं, जिससे पाठकों-को इस विषयका विशेष ज्ञान होनेकी आशा की जाती है।

यदि इससे पाठकोंका कुछ भी उपकार होगा, तो लेखक अपना परिश्रम सफल समझेगा।

कलकत्ता
अनन्त चतुर्दशी
सं० १९९४

अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

विषय-सूची

प्रस्तावना

प्राचीन कालमें हिन्दुस्थान और ईरान दोनोमें ज्ञानका आदान-प्रदान निरन्तर हुआ करता था। अरवके साथ भी हिन्दका सम्वन्ध था। अरव लोग वाणिज्य-व्यापारके लिये यहाँ आते जाते थे और हमारे देशके मालका यूरोप और अफ्रीका आदिमे प्रचार किया करते थे। यही नही, अरवोंने भारतसे ज्योतिष, वैद्यक और अङ्कगणित शास्त्र सीखे थे। और इसीलिये अङ्क वा गिनतीको आज भी मुसलमान "हिन्दसा" ही कहते है। खलीफा हारूँरशीदके जमानेमे ही हिन्दू पण्डित अरव-ईराक गये ही नही थे, वल्कि जेरूसेलमके हमीदिया पुस्तकालयमें हारूँरशीदके महामन्त्री फजल विन यहियाका मुहर लगा हुआ एक ताम्र-पत्र मिला है, जिसपर १२८ शेर लिखे हुए है, जिनमें भारतवर्ष, वेदो और आर्य ज्ञान-विज्ञानकी बड़ी प्रशंसा की गयी है। हारूँरशीदने वैत-उल-किताव (विद्या-मन्दिर) नामसे अनुवाद विभाग स्थापित किया था और दार्शनिक ग्रन्थोंका अनुवाद पारसी, ईसाई, यहूदी और हिन्दू अनुवादकोंसे कराया था। इसके उत्तराधिकारी मामूँरशीदने इस विभागको वहुत उन्नत किया था। हजरत मुहम्मदसे ५०० वर्ष पहलेके कवि जरहम-बिन-ताईकी कवितामे गीता के "परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृता" इत्यादि श्लोकोंके आधारपर श्रीकृष्णावतारकी चर्चा और प्रशंसा है। इसमें महादेवकी आराधना इष्ट फल देनेवाली वतायी गयी है।

मद्रासके समुद्र-तटपर ट्रावनकोर राज्य तथा कालीकटके सामुरि या जमोरिनके राज्यमें अरव व्यापारी आते और निर्भय होकर रहते और व्यापार करते थे । हिन्दू राजाओंका उनके साथ वहुत शिष्ट व्यवहार था । परन्तु इस्लामके अभ्युत्थानके वादसे अरवोंमें लड़ाकी वृत्ति काम करने लगी थी । अरवोंकी इच्छा भारतपर चढ़ाई करनेकी हुई, परन्तु वहुत दिनोंतक उन्हें कोई वहाना न मिलनेसे चुपचाप मन मसोस कर रह जाना पड़ा । अन्तको एक बहाना मिल ही गया । दक्षिण भारतसे कुछ अरव स्त्रियाँ जा रही थीं । इन्हे सिन्धके पास जल-दस्युओंने लूट लिया । दिमिश्कके खलीफाने सिन्धके राजा दाहिरको इस कृत्यका उत्तर-दाता ठहराकर सिन्धपर चढ़ाई करनेका हुक्म अपने सरदार मुहम्मद-विन-कासिमको दे दिया । इसने देवल वन्दरपर ७१२ ईस्वीमें चढ़ाई कर उसे लूट लिया और लोगोंको कत्ल किया । लड़ाईमें सिन्धका राजा दाहिर भी मारा गया । दाहिरका लड़का मैदानसे भाग गया, पर उसकी रानीने अच्छी तरह मोर्चा लिया । अन्तमें लड़ती-लड़ती वह भी मर गयी । सिन्धपर अरवोंका अधिकार हो गया, परन्तु सिन्धमें मुसलमानों की संख्या बहुत अधिक हो जाने और सिन्धी भाषाकी लिपि अरवी वन जानेके सिवा सिन्धपर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा ।

ईरान या फारसमें भी आर्य पण्डित जाया करते थे । शाह गस्तास्प-के समयमें यहाँसे व्यास जी गये थे और इनसे मिलनेको शाहने वहाँ के विद्वान् दार्शनिक जरतुस्त (जोरोऐस्टर) को वुलाया था । उस समयके वाद ईरानमें सैकड़ों वर्षोपर अव एक भारतवासी हिन्दू रवीन्द्र-नाथ ठाकुर निमन्त्रित किया गया और सरकार और प्रजा द्वारा उसका

आदर-सत्कार हुआ है, क्योंकि गुलामीके बन्धनमें जकडे हुए भारतमें ईरानियोंको कुछ अच्छाई नहीं दिखती थी, यहाँ तक कि उनकी दृष्टिमें हिन्दू * नाम तक गुलाम अर्थका बोधक बन गया था। यद्यपि भारतपर ईरानियोंका राज्य कभी नहीं हुआ, तथापि ईरानी संस्कृति और भाषा का राज्य अवश्य यहाँ सैकड़ों वर्षो रहा और किन्हीं बातोंमें तो आज भी है। ईरानियोंके दो आक्रमण मुगल साम्राज्यके अन्तिम दिनोंमें हिन्दुस्तानपर हुए थे। परन्तु नादिरशाहका आक्रमण उसकी क्रूरता और राक्षसी वृत्तिके कारण ही प्रसिद्ध है और अहमदशाह दुर्रानी मराठोंको पानीपतमे हराकर भी भारतपर अपनी विजय दृढ़ न कर सका। और तो क्या, भारतपर यह पश्चिमी आक्रमणकारियोंका अन्तिम आक्रमण था।

जिन मुसलमानोंने भारतको पादाक्रान्त कर सैकड़ो वर्षोंतक राज्य किया, वे अरब या ईरानी न थे, उनमें तुर्क, पठान, मुगल आदि थे। हिन्दुस्तानपर सबसे पहले जिन तुर्कोंने अफगानिस्तानके रास्तेसे चढाई की थी, हमारी भाषापर वे अपना कोई प्रभाव नहीं छोड़ गये थे। अवश्य ही कुछ तुर्की शब्द भी हमारी भाषामें आ मिले और आश्चर्य नहीं कि इन तुर्कोंके कारण ही हमारी भाषामे मुसलमानोंके लिये तुर्क या तुरुक शब्द का प्रयोग होने लगा हो, † पर ऐसे शब्द और भाषाओं में भी हैं।

---

* सम्भव है, भारतपर कुतुबुद्दीन ऐबकका शासन आरम्भ होने पर हिन्दू शब्द फारसीमें गुलाम, काफिर आदि अर्थो का वाचक बना हो।

† "हिन्दू तुर्कन भई लराई।" (पद्मावत) "हिन्दू तुरुक दीन द्वै

सन् ९७७ ईस्वीमें तुर्क अलप्तगीनके गुलाम सुबुक्तगीनने गजनीपर अधिकार जमाया और अपनेको अमीर प्रसिद्ध किया। यह वड़ा उच्चाकांक्षी था और इससे इसने सन् ९८६में पञ्जाबपर धावा बोल दिया। बादको इसके बेटे महमूदने भारतपर सत्रह बार चढ़ाइयाँ कीं और देशको अच्छी तरह लूट-पाट कर लोगोंके साथ अत्यन्त क्रूरताका व्यवहार किया। इन आक्रमणोंमें वड़ा विद्वान् मुहम्मद-बिन-अलबेरूनी भी साथ था, जिसने स्वयं भारत और भारतवासियोंका ज्ञान प्राप्त किया, उनकी भाषा और संस्कृतिका अध्ययन और मनन किया और अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "किताब-उल-हिन्दमें" हिन्दू जीवन और साहित्यके विविध रूपोंकी अधिकारपूर्वक चर्चा की। ये पुराने आक्रमणकारी जो भाषा बोलते थे वह निरसन्देह तुर्की थी, पर ये फारसीके पैरोकार थे और शायद इसी भाषामें शासन-कार्य चलाते थे। जान पड़ता है कि महमूदकी तारीफमें मशहूर शाइर फिर्दोसीने "शाहनामा" नामक जो काव्य रचा था, वह इसी कारण फारसीमें था।

जब किसी देशमें दो संस्कृतियोंका सङ्घर्ष होता है तब एकके रीति-रिवाज, चालढाल, रहनसहन सङ्गीत, साहित्य, कला, वेष-भूषा आदिका प्रभाव दूसरीपर पड़े बिना नही रहता। साधारणत. पराजित और शासित ही अपनेको हीन और शासकोंको श्रेष्ठ समझकर शासक जातिके समकक्ष बननेके अभिप्रायसे प्रत्येक बातमे उसका अनुकरण करते हैं। परन्तु ऐसा भी कभी कभी देखा गया है कि शासकोंने भी शासितोकी नकल कई बातोंमें

गाये" (छत्रप्रकाश) "हिन्दुहिं मधुर न देहिं कटुक तुर्कहिं न पियावहिं" (नरहरि कवि)।

की है। इस देशमें आर्य और अनार्य संस्कृतियोंकी मोर्चेबन्दीके बाद जब आर्य संस्कृतिने अनार्य संस्कृतिपर विजय पायी, तब स्वभावत अनार्योंने आर्य संस्कृति स्वीकार कर ली और बड़े बननेकी इच्छासे अनार्योंके बहुजन समाजकी प्रवृत्ति आर्य रीतिनीतिकी ओर हुई। परन्तु कालान्तरमें जब आर्य लोग अपनी प्रभुता स्थापित हो जानेके कारण निश्चिन्त बैठ गये तब अनार्यो द्वारा अनार्य भाव धीरे-धीरे आर्य जनतामें प्रवेश करने लगा। अथवा यह भी सम्भव है कि अनार्योका परतंत्रताका बोझ कुछ हल्का करनेकी नीयतसे आर्य लोगोंने स्वत अनार्योंकी कितनी ही बातें मान ली हों, जिसमें दोनो नीरक्षीरकी तरह मिल जॉय।

यह प्रसिद्ध है कि वैदिक आर्योंमें जातपाँतका बखेड़ा और मन्दिर-मूर्त्तियोंका प्रचार न था। उनमें चातुर्वर्ण्य व्यवस्था थी और वे इन्द्र, चन्द्र, वरुण, सविता आदि देवताओंकी यज्ञोंद्वारा उपासना किया करते थे। परन्तु अनार्योंके ससर्गसे उनमें देवमन्दिर और मूर्त्तियाँ आयीं और चार वर्णोंके बदले सैकड़ों जातियाँ और उपजातियाँ बन गयीं। अनार्योंमे बहुतसी जातियाँ थीं, इसलिये अनार्योसे आर्योंमें जाति संस्थाका आना आश्चर्यजनक नहीं है। यह केवल कल्पना नहीं है। मनुस्मृतिमें आठ प्रकारके जो विवाह माने गये हैं, उनमें आसुर और राक्षस विवाहोंका अस्तित्व यही सिद्ध करता है।*

परन्तु बहुधा पराजित और शासित ही विजेताओं और शासकोंकी

---

* ब्राह्मो दैवस्तथैवार्ष प्राजापत्यस्तथासुर।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधम ॥ २१ अ ॥

संस्कृति अपनाते आये हैं, क्योंकि ये अपनेको हीन और उन्हें श्रेष्ठ समझते हैं। इसीलिये बहुतसे अनार्य आर्य बन गये। मुसलमानी अमलदारी-में भी कितने ही हिन्दू मुसलमान बन गये और जो मुसलमान नहीं हुए वे ऊपरसे पोशाक आदिमें मुसलमान बननेमें लाभ समझने लगे। जैसे अङ्गरेजी पोशाक पहनकर लोग ऐसी बहुतसी जगहोंमें चले जाते हैं और ऐसे स्थानोंपर बैठ सकते हैं, जहाँ देशी पहनावेकी गुजर नहीं है, वैसे ही मुसलमानी अमलदारीमें लोग मुसलमानोंकी नकल इस चतुराईसे करते थे कि कहीं भेद न खुल जाय। इसलिये कोई कोई तो अपनी मासे पूछ भी लिया करते थे कि—"अम्माँ! मैं हिन्दू तो नहीं जान पड़ता?" लखनऊमें नवाबी अमलदारीमें मुहर्रमके दिनोमे कोई आदमी हरे रङ्गके कपड़े पहने बिना बड़े इमामबाड़ेमे नहीं जा सकता था और बुजुर्गोंसे सुना गया है कि वहाँ जानेके लिये वे अपनी मिर्जई और टोपी रङ्ग लिया करते थे।

शिहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी, कुतुबुद्दीन ऐबक नामक अपने गुलामको अपने अधीन भारतका शासक बनाकर चला गया था। यही पहला मुसलमान बादशाह हुआ। यह तथा और भी मुसलमान आक्रमणकारी अफगानि-स्तानसे ही हिन्दुस्तान आये थे। यद्यपि इन सबकी भाषा तो तुर्की थी, पर ये फारसी बोलते और उसीमें अपना सब व्यवहार चलाते थे। इस प्रकार हिन्दुस्तानके बादशाहों और नवाबोंकी भाषा फारसी होनेके कारण हमारी भाषा हिन्दीपर फारसीका ही प्रभाव विशेष पड़ा, जिसका हमें इस पुस्तकमें विचार करना है। यह दूसरी बात है कि इस फारसीपर अरबीका काफी असर हो चुका था।

सहायक पुस्तकोंकी नामावली

हेमचन्द्र सूरि—प्राकृताष्टाध्यायी (वाम्बे संस्कृत सीरीज़ सन् १६०० का संस्करण)

पद्मसिंह शर्मा—पद्मपराग

" —हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी

गो० तुलसीदास—रामचरितमानस (निर्णयसागरका संस्करण)

रामनरेश त्रिपाठी—कविताकौमुदी १ली जिल्द

पद्माकर—जगद्विनोद (नवलकिशोर प्रेस, १६०० का संस्करण)

मुरारीदान कविराजा—जसवन्तभूषण (संवत् १६५४ का संस्करण)

चन्दबरदायी—पृथ्वीराज रासौ (नागरीप्रचारिणी सभाका संस्करण)

मीर अम्मन—बागोबहार

अब्दुर्रहीम खानेखानाँ—खेटकौतुक जातकम् (बनारस संस्करण)

जगदीशचन्द्र वाचस्पति—मौलाना रूम और उनका काव्य (सम्वत् १६८० का संस्करण)

उमरावसिंह कर्णिक—महाकवि अकबर और उनका उर्दू काव्य (सन् १६३० का संस्करण)

राजकिशोर—महाकवि नजीर और उनका काव्य (सन् १९२२ का संस्करण)

मौ० मुहम्मद हुसैन आज़ाद—आवेहयात

" " —सखुनदाने फारस

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका—९वाँ संस्करण

दीनानाथ देव—हिन्दुस्तानी ग्रामर

बालमुकुन्द गुप्त—हिन्दी भाषा

इत्यादि इत्यादि।

हिन्दीपर फ़ारसीका प्रभाव

संस्कृत और फ़ारसी

इस देशकी प्राचीन भाषा साधारण लोगोमे संस्कृत नामसे प्रसिद्ध है। यद्यपि आधुनिक भाषाओंकी तुलनामे वह प्राचीन अवश्य है, तथापि उससे प्राचीनतर एक भाषा थी, जो वैदिक भाषा या वेद-भाषा कहाती है। इसी प्रकार वर्त्तमान फारसीसे भी प्राचीनतर भाषा पहलवी नामसे प्रख्यात थी। पर इससे भी प्राचीनतर भाषाको विद्वानोने "जेन्द"* नाम दिया है, जो पार-

---

* किसी किसीका मत है कि "जेन्द" छन्द शब्दका अपभ्रष्ट रूप है और चूँकि पुरुषसूक्तादिमें अथर्ववेदको "छन्दांसि" कहा है, इसलिये जेन्द वैदिक भाषाका ही नामान्तर है। परन्तु प्राचीन कालमें वैदिकभाषा को छन्द और लोक भाषाको संस्कृत भाषा कहते थे।

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्माद जायत ॥

— पुरुषसूक्त

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषासह।

—अथर्व० ११।७।२४

सियोके धर्म-ग्रन्थ अवस्ताकी भाषा है। वेदभाषा और जेन्दभाषा मे बहुत अधिक साम्य है और ऐसा जान पड़ता है कि ये दोनो सगी बहनेंसी है। इसलिये इनकी भी किसी माताका अनुमान आप ही आप होने लगता है। जेन्दकी वर्णमाला संस्कृतसी ही है और उसमे १३ स्वर है।

फारसका पुराना नाम ईरान है। यहाँ पहले जरतुश्त या जोरोऐस्टरका धर्म प्रचलित था। परन्तु जब अरबोने ईरानपर चढ़ाई की और ईरानियोको हराकर अपना दीने इस्लाम स्वीकार करनेके लिये बाध्य किया, तब जिन्हे कोई और उपाय न सूझा, वे मुसलमान बन गये। परन्तु जिन्हे अपने पुराने धर्मसे प्रेम था, उन्होने घरबार छोड़ और सम्मान-सम्पत्तिसे मुँह मोड़ गुजरातके एक हिन्दू नरेशकी शरण ली, जिसने उन्हे नवसारी और उसके आसपास रहनेकी अनुमति दे दी। जो ईरानी ईरानमे रह गये और जिन्होने अपने प्राणो और सम्पत्तिकी रक्षा करना उचित समझा, वे मुसलमान हो गये। जो हिन्दुस्थान चले आये, वे पारस देशसे आनेके कारण पारसी कहलाने लगे। फारस को पारस भी कहते है, इसलिये अब तक उस देशसे इनका सम्बन्ध लगा हुआ है। चूँकि पारसी और आर्य अपने अपने ढङ्ग के अग्निपूजक है, इससे वैदिक आर्योसे इनका सम्बन्ध स्पष्ट होता है। गुजरातमे रहनेके कारण इन्होने गुजरातियोकी भाषा, पहनावा और अल्ले वा उपाधियाँतक अपना ली है, यथा शाह, पारख, मेहता. शेठ इत्यादि। इनकी पगड़ी गुज-

राती पगड़ी ही होती थी। अब लोग एक तरहकी फेल्ट पगड़ी पहनने लगे है, पर पुराने लोग गुजराती पगड़ी ही पहनते थे। दादाभाई नवरोजी, सर फीरोजशाह मेहता, सर दीनशाह वाचा, सर जीवनजी मोदी प्रभृति पारसी सज्जनोके सिरो पर गुजराती पगड़ी विराजमान थी। पूर्व पुरुषोकी जन्मभूमिसे प्रेमके कारण कुछ लोग फारसी पढ़ते भी है। इनकी भाषामे फारसी शब्द अधिक होते है।

पहलवी भाषा पुरानी ईरानी या फारसीको कहते है, परन्तु वास्तवमे यह पश्चिमी ईरानकी भाषा ३री ईस्वी शताब्दी मे थी। पहलव देश पश्चिमी ईरान ही है। वर्त्तमान शाहे ईरान रजाशाह भी पहलवी ही है। पहलवीसे वर्त्तमान साहित्य और बोलचालकी फारसी भाषाकी उत्पत्ति मानी जाती है। परन्तु फारसी शायरोने कभी कभी फारसीके लिये भी पहलवी शब्दका प्रयोग किया है। सुप्रसिद्ध मौलाना जामी कहते है :—

मौलवीए मस्नवीए मानवी।
हस्त क़ुरआँ दरज़ुबाने पहलवी॥
मन चि गोयम् वस्फ आँ आली जनाव।
नेस्त पैगम्बर वले दारद कि ताव॥

अर्थात्—मौलाना रूमकी जो मस्नवी है, वह फारसी भाषामे क़ुरान है। मै आली जनावकी क्या तारीफ करूँ? वे पैग़म्बर न थे, पर पैगम्बर जैसी ताकत रखते थे। पहलव लोगो

की चर्चा मनुस्मृतिने व्रात्य क्षत्रियोंमे की है। दसवें अध्याय मे ये दो श्लोक है :—

> शनकैस्तु क्रियालोपादिमा क्षत्रिय जातयः ।
> वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥४३॥
> पौड्रकाश्चौड्द्रविड़ा॰ काम्बोजयवनाः शका॰ ।
> पारदा॰ पह्लवाश्चीना॰ किराता दरदा खशाः ॥४४॥

अर्थात्—पौड्र, ओड्र, द्रविड़, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद और खश—ये क्षत्रिय जातियाँ क्रियाके लोप करने और ब्राह्मणोंके अदर्शनके कारण वृषलत्व को प्राप्त हुईं। इससे पह्लव व्रात्य क्षत्रिय ठहरते है। भारतके व्रात्य क्षत्रियोंने प्राकृत भाषा और विशेषतः उसके संस्कृत रूप पालीकी बड़ी उन्नति की है।

मौलाना मुहम्मद हुसेन आजादने "सखुनदाने फारस" मे यह सुझाया है कि पह्लव यहाँसे किसी प्रकारकी प्राकृत ईरान अपने साथ ले गये होंगे जो आज पह्लवी कहाती है। ईरान का दक्षिण-पश्चिम प्रदेश फारस कहलाता था और समग्र देश-पर इसका प्रभुत्व होनेके कारण ईरान फारस और ईरानकी भाषा फारसी कहलाने लगी।

अरबी और फारसी

फारसी संस्कृतसे मिलती जुलती है, इसलिये भाषाओंके वर्गीकरणमे वह आर्य भाषा मानी जाती है। परन्तु उसपर

अरबीका बड़ा प्रभाव है, क्योंकि अरबोंने ईरानको पदाक्रान्त करके ईरानियोको मुसलमान बनाया था और अपनी लिपि उन्हे दी थी। इसके पहले ईरानी लोग कौनसी लिपि काममे लाते थे यह तो हम नही जानते। परन्तु कहते है कि पहलवी एक प्रकारकी शेमिटिक लिपिमे लिखी जाती थी, इसलिये फारसी के लिये अरबी लिपिका सुधरा रूप स्वीकार करनेमे ईरानियोको कोई आगापीछा नही हुआ तो कोई आश्चर्य नही है।

जैसे संस्कृत, फारसी आदि आर्य भाषाएँ है, वैसे ही अरबी, हिब्रू (इब्रानी), असीरियन (आसुरी), फिनिशियन (पणी), हब्शी आदि भाषाएँ शेमेटिक कहलाती है। शाम सीरियाका पुराना नाम है और इसलिये वहाँके लोग शेमाइट और वहाँ-से सम्बन्ध रखनेवाली भाषा शेमेटिक कहाती है। इनमे अरबी और यहूदियोकी भाषा इब्रानीका फारसीपर बड़ा प्रभाव पड़ा है। और तो क्या इस प्रभावके कारण ही भीतरसे आर्य भाषा होने पर भी आज फारसी देखनेमे अनार्य अथवा शेमेटिक भाषा जान पड़ती है। जैसे किसी हिन्दू को फब्बेदार टोपी (जो भ्रमवश तुर्की कहलाती है) पहने देखकर लोग मुसलमान समझ लेते हैं, वैसे ही फारसीको अरबी लिबासमे देख अल्पज्ञ लोग शेमेटिक मान बैठते है।* परन्तु फारसी शेमेटिक भाषा नही है और अरबी, इब्रानी,

* कई वर्ष हुए श्रीमती सरोजिनी नायडूके लड़केको इसी तरहकी टोपी पहने देखकर समाचार-पत्रोंने छाप दिया था कि वह मुसलमान हो

तूरानी, तुर्की, तातारी आदि अनेक भाषाओंके शब्द उसमें मिलने पर भी उसका हृदय आज भी आर्य बना हुआ है।

संस्कृत और फारसी शब्द-साम्य

ज़ेन्द और वेद-भाषाका ही साम्य नहीं है, वर्त्तमान फारसीसे संस्कृतका भी है, जैसा नीचेके शब्दोंके मिलानसे जान जायगा :—

संस्कृत	फारसी	संस्कृत	फारसी
पितृ, पितर्	पिदर	महत्तर	मिहतर
मातृ, मातर्	मादर	अस्ति	अस्त
भ्रातृ, भ्रातर्	बिरादर	गो	गाव
दुहितृ, दुहितर्	दुख्तर	आप	आब
स्वसृ	ख़्वाहिर	अभ्र	अब्र
तनु	तन	पुष्ट	पुख़्तः
श्वशुर	खुसुर	अश्व	अस्प
पृष्ठ	पुश्त	शर्करा	शकर
नप्तृ	नबीर	जीरक	ज़ीरा
हस्त	दस्त	वर्षा	बारिश
बाहु	बाज़ू	जामातृ, जामाता	दामाद

गया। परन्तु हैदराबादमें हिन्दू भी ऐसी टोपी पहनते हैं और स्वर्गीय विट्ठलभाई पटेल भी पहले पहना करते थे।

संस्कृत	फारसी	संस्कृत	फारसी
पाद्	पा, पाव	तृष्णा	तिश्ना
गोधूम	गन्दुम	द्वार	दर्
शाली	साली	शरत्	सर्द्
तारा	तारा	उष्ट्र	उश्तुर, शुतुर
पञ्च	पञ्ज	वात	वाद्
चत्वार	चहार	भ्र्	अब्र्
षट्	शश	चर्म	चरम
सप्त	हफ्त	सायं	शाम
अष्ट	हश्त	वर्षार्तु	बरसात
नव	नौ	क्षीर	शीर
दश	दह्	मेघ	मेग
शत	सद्	मर्दति	मसद्
घर्म	गर्म	अलक्षित	लेसद्
हर्म्य	हरम	मृत	मुर्दा
चक्षु	चश्म	शक्त	सख्त
चक्र	चर्ख	कुक्षि	किश
क्षपा	शब	प्रमाण	फर्मान
अहिफेन	अफयून	प्रसाद	फरशाद्
सर्षप	सरशुफ	जलौका	जलूक
आपत्	आफत	दन्त	दन्द, दन्दां
कर्पूर	काफूर	केशसू	गेसू

संस्कृत	फ़ारसी	संस्कृत	फ़ारसी
मुष्टि	मुश्त	सूर, सूर्य	हूर, ख़ूर
शृगाल	शग़ाल	अस्ति	हस्त
भूत	बूद	अद्दम	दाद्म
पतति	फ़तद	स्तौति	सतायद
बध्नाति	बन्दद	वात	बाद
भवामि	बूद्‌म	भवति	- बुवद
जायते	ज़ायद	आयाति	आयद
पचति	पज़द	जीवति	ज़ीद
मरति	रसद	तपति	तबद
करोति	कुर्द, कुनद	धावति, दावति	दावद
गदति	गोयद	क्रीत	ख़रीद
तनोति	तनद	सृजति	सरेशद
शृणोति	शिनूद	ददाति	दिहद
मत्त	मस्त		

सीमान्तके देशोंकी भाषाएँ

यो तो अफगानिस्तान और भारतके बीचके भूभागकी ही नहीं, खास अफगानिस्तानकी भाषा पश्तो या पख्तो और इसीसे मिलती जुलती भाषाएँ है। परन्तु अफगानिस्तानके रईसों और प्रतिष्ठित पुरुषोकी भाषा फारसी ही है। पश्तो अफगानोकी और बिलोची बिलोचियोंकी बोली है। इसी तरह चित्राल, काफिरस्तान, आदिकी बोलियाँ कुछ कुछ भिन्न है। भाषाओके सम्बन्धमे यह प्रसिद्ध है कि अरबी तो इल्म (शास्त्र) वा विज्ञानकी भाषा है और तुर्की शूरताकी है तथा फारसी शीरीं ज़ुबान (मधुर भाषा) है। परन्तु पश्तोके विषयमे लोगोका वही भाव है, जो तामिलके विषयमे उत्तर भारतके निवासियोका है अर्थात् किसी हाँडीमे कङ्कड़ भरकर बजानेसे जो समझ पड़ता है, वही पश्तो सुननेसे जान पड़ता है।

१—हिन्दी और प्राकृत

भारत वा भारतवर्षका दूसरा नाम हिन्द है और इसीसे हमारे पड़ोसी ईरानी और अरब हमे जानते पहचानते आते है। इसलिये जब मुसलमान यहाँ आये, तब स्वभावतः उन्होने भारत वा हिन्दकी भाषाको हिन्दवी या हिन्दी कहा। इस देशपर मुसलमानोका शासन आरम्भ होनेके समय प्राकृत भाषाओका

युग बीत और हिन्दवी या हिन्दीका आरम्भ हो चला था। परन्तु मुसलमानोको यह हिन्दवी या हिन्दी कई रूपोमे दिखाई दे रही थी, जो प्राकृत भाषाओसे उत्पन्न हुए थे। प्राचीनतम प्राकृतका नाम "आर्ष" है और सिद्ध हेमचन्द्र सूरिने अपनी "प्राकृताष्टाध्यायी" मे इसे "ऋषीणामिदम्" (ऋषियोकी भाषा) बताया है। आर्षका दूसरा नाम "ऋषिभाषिता" है। यह आर्ष वैदिक भाषाके साथ-साथ उत्पन्न जान पड़ती है। कालान्तरमे कई प्राकृतें उत्पन्न हुईं, जो शौरसेनी, मागधी और पैशाची कहलायी। अपभ्रंश नामकी भी एक प्राकृत थी, जो आर्षकी भॉति सामान्य भाषा थी। कुछ कालके उपरान्त यह सामान्य प्राकृत महाराष्ट्री अथवा प्राकृत कहाने लगी। वररुचिने अपने प्राकृतप्रकाशमे इस सामान्य भाषाको प्राकृत वा महाराष्ट्री ही कहा भी है। कुछ समयके उपरान्त एक मिश्र भाषा पैदा हुई, जो अर्द्ध-मागधी कहलायी, क्योंकि शौरसेनी और मागधीके योगसे जन्मी थी। यही महाराष्ट्री के बदले सामान्य भाषा बनी। इन प्राकृतोके अनन्तर बोलियो का युग आया, जो "भाषा" कहलायी। यह भाषा नाम बहुत काल तक हिन्दी कविताकी भाषाके लिये प्रयुक्त होता था। इसी भाषामे सूर, तुलसी, केशवके ही ग्रन्थ नहीं, जायसीतकके ग्रन्थ पाये जाते है। जायसीने पद्मावतमे हिन्दी वा हिन्दुईके साथ ही भाषा शब्दका भी प्रयोग किया है। जैसे,

"आदि अन्त जस गाथा अही। कइ चौपाई भाषा कही॥"

और

"तुर्की, अरबी हिन्दवी भाषा जेती आहिं ।"

"जामें मारग प्रेमका सबैं सराहैं ताहिं ॥"

तुलसीदासजीने रामचरितमानसमे तो "भाषा" शब्दका ही व्यवहार किया है, यथा,

"भाषा निबन्ध मुदमञ्जुल मातनोति ।"

"भाषा भनित मोरि मति थोरी । हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी ॥"

परन्तु कहते है कि एक फारसी पंचनामेमे उन्होने हिन्दवी शब्दका भी प्रयोग किया है । केशवदासजीने भी अपनी कविता की भाषाको भाषा ही कहा है ; जैसे :—

भाषा बोलि न जानहीं जिनके कुलके दास ।

भाषा कबि भो मन्दमति, तेहि कुल केशवदास ॥

उपज्यो तेहि कुल मन्दमति, सठ कवि केशवदास ।

रामचन्द्रकी चन्द्रिका, भाषा करी प्रकास ॥

इससे स्पष्ट होता है कि जिस भाषामे हमारे कवीश्वर कविता रचते थे अथवा संस्कृत ग्रन्थोका उल्था करते थे, वह तो भाषा कहाती थी और जिसका प्रयोग बोलचाल और साधारण लिखा-पढ़ी तथा मुसलमानो और हिन्दुओके भावो और अभिप्रायोके विनिमयके लिये होता था, उसका नाम हिन्दी वा हिन्दवी था । परन्तु जब मुसलमानोको इस हिन्दी या हिन्दवीके अनेक रूपो का ज्ञान हुआ, तब इनमे जो सबसे पुष्ट और परिमार्जित रूप था,

उसे उन्होने रेख्ता नाम दिया। रेख़्ता पुष्ट या पक्की भाषा है। समय पाकर यही हिन्दुओमे नागरी या नगरकी भापा वा खड़ी अथवा खरी बोली कहाने लगी। खरीका अर्थ है टकसाली, खोटी नही।

हम पहले देख चुके हैं कि वर्त्तमान बोलियोकी उत्पत्तिके पहले कई प्राकृते प्रयुक्त होती थी और इनमे सबसे अधिक मार्केकी आर्ष वा महाराष्ट्री या अर्द्ध-मागधी तथा शौरसेनी, मागधी और पैशाची थी। हम पहले जान चुके है कि इसमे आर्ष प्राचीनतम है। वर्त्तमान संस्कृत साहित्यमे हमे बहुतसे आर्ष प्रयोग मिलते है, जो पाणिनिके साधारण सूत्रोसे सिद्ध नहीं होते और ये ही आर्प प्राकृतके आधार प्रतीत होते है। अब कालान्तरमे आर्षके स्थानपर "महाराष्ट्री" आयी। इनके सिवा कुछ मिश्रित भाषाएँ थी, जिनमे "अर्द्ध-मागधी" और "नागर" मुख्य है। "नागरन्तु महाराष्ट्री-शौरसेन्योस्तु सङ्करात्"—नागर प्राकृत महाराष्ट्री और शौरसेनीके मेलसे बनी है और यही नागर नागरी की जननी है, जो हिन्दवीका ही दूसरा नाम है। अपभ्रंशका थोड़ासा पुट देनेसे यह नागरी ही वर्त्तमान हिन्दी बन गयी, जो निम्न अवतरणोसे सिद्ध हो जायगा :—

भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कन्तु।
लज्जेज्जं तु वयंसिअहु, जइ भग्गा घरु एन्तु॥
सिरि चड्अिा खन्तिप्फलइं, पुणु डालइं मोडन्ति।
तोवि महद्दुम सउणाहं, अवराहिउ न करंति॥

पुत्तें जाएं कवणु गुण, अवगुणु कवणु मुएण।
जावप्पीकी भुँहडी, चम्पिज्जइ अवरेण।
चम्पय कुसुमहो मज्झि, सहि भसलु पइट्ठउ।
सोहइ इन्दुनीलु, जणि कणइ वइट्ठउ॥
पिय-सङ्गमि कउ निद्दडी, पिअहो परोक्खहो केम्व।
मइँ विन्निवि विन्नासिआ, निद्द न एम्व न तेम्व॥
जिवँ तिवँ तिक्खा लेवि कर, जइ ससि छोलिज्जन्तु।
तो जइ गोरिहें मुहकमलि, सरसिव कावि लहन्तु॥
वायसु उड्डावन्तिअए, पिअ दिट्ठउ सहसत्ति।
अद्धा वलया महिहिं गय, अद्धा फुट्टि तडत्ति॥
जाइज्जइ तहिं देसडइ, लब्भइ पियहो पमाणु।
जइ आवइ तो आणिअइ, अहवा त जि निवाणु॥
गएउ सु केहरि पिअहु जलु, निच्चिन्तइं हरिणाइँ।
जसु केरएँ हुँकारडएँ, मुहहुँ पडन्ति तृणाइँ॥
ढोल्ला मइ तुहुँ वारिया, मा कुरु दीहा माणु
निद्दए गमिही रत्तडी, दडवड होइ विहाणु॥
विट्टीए मइं भणिय तुहुँ, माकुरु वकी दिट्ठि।
पुत्ति सकण्णी भल्लि जिवँ मारइ हिअइ पइट्ठि॥

ऊपर दिये हुए अवतरणोमे दो प्रकारके शब्द पाये जाते है। प्रथम श्रेणीमे वे हैं जो हिन्दीसे ही जान पड़ते हैं; जैसे, भल्ला (भला), हुआ, जु (जो), मारिआ (मारया, मारा), वहिणि (वहिन), महारौ (हमारा), कन्तु (कन्त), तु (तो),

भग्गा (भागा), घरु (घर), सिरि (सिर), चड़िआ (चिड़िया), खन्ती (खाती), फलइं (फलहि, फल), पुणु (पुनि), डालइं (डालहिं, डाले), मोडन्ति (मोडतो), तोबि (तोबी, तोभी,) न, करंति, जाएं, कवणु (कौन), जा, बप्पोकी, पइट्ठउ (पैठो), सोहइ (सोहै), कणइ (कणे—मराठी कड़े), जणि (जनि, जनु), बइट्ठउ (बैठो), पिय, मइं, जिवं (ज्यूं, ज्यो) तिवं (त्यूँ, त्यो), एम्ब (यो) तेवॅ (त्यो), जइ (यदि) अद्धा (आधा), गय (गया), आवइ (आवै), आणिअइ (आनिये), गयउ (गयौ) पियहु इत्यादि। दूसरी श्रेणीमे वे है, जो प्राकृतका चोला छोड़कर हिन्दीका जामा पहन रहे है, जैसे, मुहंड़ी, गोरिड़ी, रत्तिड़ी, निद्दड़ी, उड्डावन्ती (उड़ाती), देसडइ (देसको), जाइज्जइ (जाइये), वयंसिहु (वयसवालियोमे), संगमि (सङ्गममे), छोलिज्जन्तु (छीले), हरिणाइ (हिरणो), तृणाइ (तृण) इत्यादि।

डिंगल और पिंगल

इस प्राकृतका अनुकरण चन्दके रासो और दूसरे ग्रन्थोकी भाषामे दिखाई देता है। इसके शब्दोमे कोई तराश-ख़राश नही हुई और इसलिये लट्ठमार लक्कड़तोड़ बने रह गये। राजपुतानेमे भाषाके दो रूप माने जाते है। एक डिंगल और दूसरा पिंगल। डिंगल अनगढ़ भाषा है और इसमे अधिकतर राजपुतानेके चारणोकी कविता होती है। राजपुतानेमे डिंगलेतर भाषाएँ पिंगल

कहाती है, जिनमे व्रज, बैसवाड़ी, बुँदेलखण्डी, मैथिली आदि है।

जब महाराना प्रतापसिंह अकबरसे युद्धके कारण जङ्गलो मे पड़े घासकी रोटी खाते थे, उस समय एक जङ्गली बिलाव उनकी लड़कीके सामनेसे रोटी लेकर भाग गया था। बस, भूखी कन्याका करुण क्रन्दन सुनकर महारानाका धीरज छूट गया और मेल करनेके लिये उन्होने अकबरको सन्धिपत्र लिख भेजा। अकबरके दरबारमे बीकानेर-नरेश राजसिंहके छोटे भाई पृथ्वीराज राठौर कैद रहते थे। वे साहसी, वीर और सुकवि भी थे। उन्हे विश्वास नहीं हुआ कि प्रतापसिंह अकबरके सामने सिर झुकावेगे और यह उन्होने अकबरसे कह भी दिया। अकबरकी अनुमतिसे पृथ्वीराजने प्रतापसिंहको डिंगल दोहो और सोरठोमे एक पत्र लिखा। ये दोहे आज भी राजपुतानेमे लोगोके मुँहसे सुने जाते है। हमने एक वीर, देश प्रेमी राठौरसे सुने थे। इस ऐतिहासिक पत्रकी मूल प्रति तो देखनेको नहीं मिली, परन्तु दोहे ये है :—

घर बाँकी दिन पाधरा मरद न मूकै माण।
घणा नरिंदा घेरियो रहै गिरिदाँ राण॥ १॥

जिस वीरकी भूमि विकट है और समय अनुकूल है, वह स्वाभिमान नहीं छोड़ता। वह राना बहुतसे नरेंद्रोसे घिरा हुआ पहाड़ीपर रहता है।

पातल राण प्रवाड़मल बाँकी घड़ा विभाड़ ।
खूँदाड़ै कुण है खुराँ तू ऊभा मेवाड़ ॥ २ ॥

हे विकट सेनाओंके नाशक युद्धमल्ल महाराना प्रतापसिंह, तेरे खड़े रहते मेवाड़को घोड़ोंके खुरोंसे खुँदानेवाला कौन है ?

माई एहा पूत जण जेहा राण प्रताप ।
अकबर सूतो ओंधकै जाण सिराणै साँप ॥ ३ ॥

हे माता, ऐसा पुत्र जन जैसा राना प्रताप है, जिसको सिरहाने साँप समझकर अकबर सोतेसे चौंक पड़ता है ।

अइरे अकबरियाह तेज तुहालो तुरकड़ा ।
नमनम नीसरियाह राण बिना सह राजवी ॥ ४ ॥

ऐ अकबर, तेरा तेज देखकर बड़ा आश्चर्य होता है, जिसके सामने रानाको छोड़ सब राजा झुक गये ।

सह गावड़ियो साथ, एकण बाड़ै वाड़ियो ।
राण न मानी नाथ, ताँड़ै साँड़ प्रतापसी ॥ ५ ॥

हे अकबर, तूने गायोंकी तरह सब राजाओंको एक बाड़ेमें बन्द कर दिया है । केवल राना प्रतापसिंह तेरी नाथ न मानकर डकर रहा है ।

पातल पाघ प्रमाण, साँभी साँगा हर तणी ।
रही सदा लग राण, अकबरसूँऊभी अणी ॥ ६ ॥

महाराना साँगाके पोते प्रतापकी पगड़ी ही सच्ची पगड़ी है, जो अकबरके सामने नीची नहीं हुई, ऊँची ही रही ।

चोथो चीतोडाह, बॉटो वाजन्ती तणी ।

माथे मेवाड़ाह, थारे राण प्रतापसी ॥ ७ ॥

हे चित्तौड़के नाथ मेवाड़ाधिपति राना प्रतापसिंह, तेरे ही सिरपर पगड़ी है ।

अकबर समद अथाह, तिहँ डूबा हिन्दू तुरक ।

मेवाडो तिण माहँ, पोयण फूल प्रतापसिंह ॥ ८ ॥

अकबर रूपी अथाह समुद्रमे हिन्दू तुरुक सब डूब गये । उनमे कमलके फूलकी तरह मेवाड़के राना प्रतापसिंह ही रह गये ।

अकबरिये इक वार, दागल की सारी दुनी ।

अनदागल असवार, चेटक राण प्रतापसी ॥ ९ ॥

अकबरने सारी दुनियाको एक ही वार मे दागी कर दिया । परन्तु चेटक घोड़ेके सवार राना प्रतापसिंह बेदाग—निष्कलङ्क—रह गये ।

अकबर घोर अँधार, ऊंघाणॉ हिन्दू अवर ।

जागे जगदातार, पोहरे राण प्रतापसी ॥ १० ॥

अकबर रूपी घोर अँधेरी रातमे और सब हिन्दू सो गये । जगतका दाता राना प्रतापसिंह पहरेपर खड़ा जाग रहा है ।

हिन्दूपति परताप, पति राखो हिन्दुआणरी ।

सहो विपत सन्ताप, सत्य सपथ करि आपनी ॥ ११ ॥

हे हिन्दूपति प्रताप, हिन्दुओंकी लज्जा रखो । अपनी प्रतिज्ञा सच्ची करनेके लिये सब कष्ट सहो ।

चम्पो चीतोड़ाह, पोरस तणो प्रतापसी ।
सौरभ अकबर साह, अलियल आमड़िया नही ॥ १२ ॥

चित्तौड़ चम्पा है और प्रताप उसकी सुगन्ध है। अकबर-रूपी भौंरा उसके पास नहीं फटक सकता।

पातल जो पतसाह, बोलै मुख हूता बया ।
मिहर पछम दिस माहि, ऊगै कासप राववत ॥ १३ ॥

प्रताप जो अपने मुँहसे अकबरको बादशाह कहे, तो कश्यप-पुत्र सूर्य पश्चिममें उगे।

पटकूँ मूछा पाण, कै पटकूँ निज तन करद ।
दीजै लिख दीवाण, इण दोमहली बात इक ॥ १४ ॥

हे दीवान, मैं अपनी मूँछपर हाथ फेरूँ या अपने शरीरको तलवारसे काट डालूँ, इनमें एक बात लिख दे।

पत्र पाकर प्रतापका साहस सौ गुना हो गया और फिर पूर्व-प्रतिज्ञाके अनुसार उन्होंने उत्तरमें लिखा :—

तुरुक कहासी मुखपतो, इण तणसूँ इकलिंग ।
ऊगै जाही ऊगसी प्राची बीच पतग ॥ १ ॥

एकलिंग भगवान् इस शरीरसे प्रतापके मुँहसे तो अकबरको तुरुक ही कहावेंगे और सूर्य पूर्वमें जैसे उगता है वैसे ही उगेगा।

खुसी हूँत पीथल कमध * पटको मूछाँ पाण ।
पछटण है जेते पतो कमला सिर केवाण ॥ २ ॥

* कमध = कमधज = कबंधज ।

हे कमधज पृथ्वीराज, खुशीसे मूछोंपर ताव दो। जब तक प्रतापसिंह जीवित है, तब तक यवनोंके सिरपर तलवार जानो।

सॉँग मूँड सहसीस को समजस जहर सवाद।
भइ पीथल जीतो भलॉ बैण तुरुक सूँ वाद॥ ३॥

राना प्रताप सिरपर भाला सहेगा, क्योंकि बराबरवालेका यश विषसा जान पड़ता है। हे वीर पृथ्वीराज, तुरुकसे वादानुवादमें आपकी विजय हो।

वीर पृथ्वीराजकी और भी कविता डिंगल और पिंगल दोनोंमें है, विस्तारभयसे यहाँ लिखी नहीं गयी।

राजपुतानेमें ऐसे अनेकों अवसरोंपर डिंगलकी कवितामें ही अपने मनोभाव व्यक्त किये जाते थे। जब महाराना अमरसिंह

संवत् सु बारा सौ इकावन (१२५१), विक्रमी दल साज।
आयो जु साहबुदीन सनमुख, भये रन महाराज (जयचन्द)॥ ७॥

सर अर्ध चन्द्राकार लग, कट परयौ सिर मधि जग।
कछु काल रितयो तदपि थिर रहि, दुरद पीठ निखग॥ ८॥

यह हेत कहत कमन्धज तु तिह, वंशकों विख्यात।
अति रुधिरसों अन्हवाय अवनी, दई यवनन हात॥
कट परत मस्तक लरत धर, तिह कहत है जु कबध।
अपभ्रंश कमधज शब्द भौ, मरु देश पाय सँबन्ध॥ ९॥

—जसवन्त-भूषण पृ० ५।६

जहाँगीर की फौजोंके दबावसे जङ्गल-जङ्गल घूमते-फिरते थक गये थे, तब नवाब खानेखानाँको उन्होंने ये दो दोहे लिख भेजे थे :—

हाडा कूरम राववड, गोखाँ जोख करन्त ।
कहियो खानाखानने, वनचर हुआ फिरंत ॥
तुवराँसूँ दिल्ली गयी, राठोड़ाँ कनवज्ज ।
राण पयम्पे खानने, वह दिन दीसै अज्ज ॥

उत्तरमे खानेखानाँने लिखा :—

धर रहसी रहसी धरम, खपजासी खुरसाण ।
अमर विशम्भर ऊपरे, राखो नहचो राण ॥

ये दोहे कठिन डिंगलमें नहीं है और थोड़े ही ध्यानसे समझमे आ जाते है। "ढोला मारूरा दूहा" की भाषा इससे भी सरल है और ये अपभ्रंश प्राकृतसे बहुत मिलते है। देखिये :—

भरइ पलट्टइ भी भरइ, भी भरि भो पलटेहि ।
ढाढ़ी हाथ सन्देसड़ा, धण बिललती देहि ॥
जिणि देसे सज्जण वसइ, तिणि दिसि बज्जउ वाउ ।
उआँ लगे मो लग्गसो, ऊही लाख पसाउ ॥
दुखवीसारण मनहरण, जो ई नाद न हुंति ।
हियडो रतन-तलाव ज्यूँ, फूटी दह दिसि जंति ॥

हिन्दीमें विदेशी शब्द

हिन्दीका प्राचीन ग्रन्थ इस समय "पृथ्वीराज रासो" माना जाता है, क्योकि इससे पहलेके जो ग्रन्थ मिलते है, वे सब प्राकृतमे है। चन्दके इस रासोमे विदेशी शब्दोका बहुल प्रयोग आश्चर्य-जनक है, परन्तु कारणपर विचार करनेसे आश्चर्यका उतना कारण नही रहता और इसे प्रकृतिका नियम मानना पड़ता है। चन्द लाहोरका निवासी था और पंजाबपर कोई दो सौ साल पहलेसे ही मुसलमानोका राज था, इसलिये चन्दकी कवितामे मुसलमानी— अरबी, फारसी और तुर्की शब्दोका आ जाना आश्चर्यका विषय नहीं है। इसके सिवा रासोमे शिहाबुद्दीनके साथ युद्धका भी वर्णन है, जिससे अरबी, फारसी शब्दोका आना अनिवार्य हो गया। चन्दवरदायीके इस महाकाव्यमे क्या है, इसकी सूचना इस श्लोकमे दी गयी है :—

उक्ति धम विशालस्य राजनीति नवंरस।
षट् भाषा पुराणञ्च कुरानं कथित मया॥
—समय १ रुपक ३८

षट् भाषा वा षड्भाषासे सस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पैशाची और अपभ्रंशका अभिप्राय है।

रासोसे जो अवतरण नीचे दिये जाते है, उनमे मोटे अक्षरो मे जो शब्द है, वे सब अरबी या फारसीके है :—

हसम हयगय देस अति, पति सायर म्रजाद।
प्रबल भूप सेवहिं सकल, धुनि निसान बहु साद॥

भइ सु आनि अवाज, आप साहाव दीन सुर ।
वलक सोवलं तेग अच्चूक तीर ।
ठट्ठीठट्ट बल्लोच ढालं निसानी ।
तुम छड्डि सरम हम कह्रौ वत्त ।
आसिक्क तासु हुस्सेन हुअ ।
हुस्सेन मीर सल्लाम करि ।
डेरा हरम सुपिट्ठ रवि, चिहुँ पष्षा वर भीर ।
पासबान कुल सील सम, पास रष्षि वर नीर ॥
पात्र एक साहाब संग हूर नूर गुणगान ॥
तरकस पाच गिरंम ।
संजाब षान उमराव सव्व, लज्जी अनन्त आदव्व थाह ।
मुक्कौं सु गुनह कीनौ पसाव ।
करि गोसल्ल पवित्र । होइ चिंते रहमानं ॥
उलट्यौ सेन समुद्दह आव ।
वकै दीन दीनं भर अप्प दूरं ।
हयं छंडि काम मनं गन्नि गस्स ।
वज भेरि नफेरि भयान सुरं ।
तव भैरव डक गन सरिस ।
किंन हुकम हरनद ॥
पच्चास पंच हज्जार गन्नि ।
पन्नव पुरान तिन कह्यौ ।
आरव्व बोल बोल्यौ बिहर ।

सुरतान जानि जंप्यौ गरूर ॥
प्रतिबुद्ध लहौ प्रथिराज नूर ।
अतुलित्त जुद्ध सामत सूर ॥
गय महल साहि मिलि कही वत्त ।
सिर धूनि रीस करि नैन रत्त ॥
कल्हि तरीक सउंच दिन,
चढि मरि सद्दौ सार ।
कहा डर काफर दाखहु मुज्झ ॥
कहा भर आवध आगर जुज्झ ।
कही पवरि सुरतान ॥
वीर सोर आवात सुनि, गज छुटि वन्धन तोरि ।
भिरे उभय भयभीत होइ, परि दरवारह् होरि ॥
अष्ट सहस असवार, तुंग तिय अग्ग बनाइय ।
पेसकसी पतिसाह, कूर परपंचन आइय ॥
लै फुरमान समान धरि ।
जमन जोर बल बहुत करि ।
साभ्रमं हत्थ तस्वी सुरप्प ।
दई चितरेषा सितावी सुडोर ।
प्रात कूच उप्परे ।
आज मुकाम जु दुस्तरि ॥
झुकि प्रथिराज नरिंद ।
सिलह सज्जी नदि उत्तरि ॥

दुअ कोटल दुअ नृपति, किन्ने हाजुर आनि ।
सुर असुरन करि मेर, मथत दरिया हिल्लोरी ॥
मर्दन सों मिलि मरद, मरद बुल्यो भूष नाहर ।
लोहानै अरि फौज, चक्क चिहुँ कोद फिराइय ॥
नाहर नाहर राय, कहर नाहर सुकन्ह कर ।
राजनीति गज लब्भि, सीस लग्गा असमानं ।
मरडोवर परिहार मारि उज्जार जेर किय ।
सगपन इक षग त्रास, षलक सेवा सिर मरडहि ।
एक सुदिन सोमेस, दूत हज्जूर बुलाइय ।
तौ पत्तन सुनि श्रब्ब कग्गद वर षल्पंज आकूतयं ।
हथनारि धारि आतस अनंत, सोर रोर अम्मर उडिय ।
भिन केति षग्गं हिनक्केति ताजी ।
मिलै भूप भूपं महावीर गाजी ॥
लगै गुर्ज सीसं इसे टोप टुट्टैं ।
प्रलै काल च्यालं मनों वीर जग्गैं ॥
चढ्ढिय जिहाज जस जट्ठि खल ।
धुकत धरनि षावास । कोपि कैमास कालकर ।
हुअ डेरा नौबति बिहसि । पंच सबद दरबार ॥

चन्दके पहलेके किसी कविका हमें पता नहीं है, जिसके ग्रन्थ देखनेमें आये हों , परन्तु चन्दके बाद जो पहला कवि हुआ, वह हिन्दू नहीं, मुसलमान था और उसने डिंगलमें नहीं, पिंगलमें रचना की थी। यह अनुमान करनेके कारण है कि डिंगलका युग

बीत चुका था, क्योकि राजपूत राजाओने पिगल साहित्यका बड़ा आदर किया था। आमेर-जयपुरके राजा जयसिह मिर्जाने कविवर बिहारीलालको प्रोत्साहन देकर "सतसई" लिखायी और जयपुरके महाराज जगतसिहने कवि पद्माकरको आश्रय दिया, जिन्होने "जगद्विनोद" की रचना की। जोधपुरके महाराज जसवन्तसिह भी पीछे न रहे और इन्होने स्वयं संस्कृत ग्रन्थ "कुबलयानन्द" के "ध्वन्यालोक" भागका भाषान्तर "भाषाभूषण" नामसे दोहोमे किया। दूसरे महाराज जसवन्तसिहने अपने दरबारके कवि महामहोपाध्याय कविराजा मुरारीदानको एक विस्तृत अलङ्कार ग्रन्थ लिखनेकी आज्ञा दी, जिसके फलस्वरूप "जसवन्त-भूषण" और "जसवन्त जसोभूषण" की रचना हुई। ये सभी ग्रन्थ पिगलमे है।

पिगलके प्रथम कवि अमीर ख़ुसरोके बाद जो कवि हुए है उन्होने यथेच्छा फारसी, अरबी और तुर्की शब्दोका व्यवहार किया है। केवल सूरदास अपवाद है, जिन्होने विदेशी शब्दोका प्रयोग बहुत कम किया है। परन्तु कबीर, नानक, तुलसीदास, बिहारी, गंग, भूषण, पद्माकर और पजनेसने तो उनका ख़ूब ही प्रयोग किया है। इस विषयमे हिन्दू और मुसलमान कवियोमे बड़े मार्केका अन्तर है, क्योकि हिन्दुओने तो विदेशी शब्दोका प्रयोग किया है और मुसलमान यथासाध्य उनसे बचते रहे है। जायसी, रहीम, रसखान, रसलीन, उसमान, मुबारक इत्यादिकी कवितामे ऐसे शब्द बहुत कम पाये जाते है।

हिन्दी और मुसलमान

"पृथ्वीराज रासो"के समयसे हिन्दुस्तान वा मध्य देशपर मुसलमानी राज्यका आरम्भ होता है। बडे ही खेदकी वात है कि "पृथ्वीराज रासो" के पूर्वकी और खुसरोके पूर्वकी भाषाओंके निदर्शन नहीं मिलते, परन्तु यह निस्सङ्कोच कहा जा सकता है कि चन्दके पहले भी डिंगलके अच्छे कवि हो गये होंगे, क्योंकि किसी आदि ग्रन्थमे भाषा और भावोंका ऐसा सौष्ठव सम्भव नहीं है, जैसा रासोमें है। यही वात .खुसरोके वारेमे भी कही जा सकती है। खुसरोकी भाषाको देखकर हर कोई कह सकता है कि यह खुसरोकी पैदा की हुई नहीं है और कोई चाहे जैसा विद्वान् हो, ऐसी परिमार्जित भाषा आरम्भमे ही नहीं लिख सकता। इसलिये चन्दके पहले और .खुसरोके पहले वहुतसा साहित्य बन चुका होगा, जिसका हमे पता नहीं है। डिङ्गल और पिङ्गल दोनोके विषयमे यही वात है।

अलाउद्दीन खिलजीके जमानेमे अमीर खुसरोने हिन्दीकी कविता रची थी। खुसरो वड़े भारी पण्डित थे। वे अरवी, फारसी, तुर्की, तूरानी, हिन्दी प्रभृति कई भाषाएँ जानते थे। उन्होंने ११ वादशाहोंको दिल्लीके तख्तपर चढ़ते उतरते देखा था और ७ बादशाहोंके तो वे दरवारी ही थे। .खुसरोका देहान्त सन् १३२५में हुआ था सौर उस समय वे ८० वर्षके लगभग रहे होंगे।

खुसरोके समयमें ही हिन्दुओंमें फारसी पढ़नेका चाव पैदा हुआ था, क्योंकि यह राजभाषा थी। हिन्दुओंकी यह लालसा खुसरोने "खालिकबारी" लिखकर पूरी की थी। हिन्दी भाषामें भी बहुतसे फारसी, अर्बी और तुर्की शब्द चल पड़े थे। खालिकबारीके सिवा खुसरोकी बहुतसी पहेलियाँ, मुकरियाँ या कह-मुकरनियाँ और सुखने आदि प्रसिद्ध हैं। ये सब फारसी अक्षरोंमें लिखे गये होंगे, क्योंकि यद्यपि खुसरो हिन्दुओं और मुसलमानोंकी भाषाओंके बीचमें सेतुका काम कर रहे थे, तथापि उनकी पहेलियाँ, मुकरियाँ आदि उन मुसलमान रईसों और उमराके मनोविनोदका कारण ही होती थीं, जो हिन्दी और फारसी आदि भाषाएँ जानते थे। हिन्दुओंमें बहुत कम लोग अमीर साहबकी जबाँदानीका लुत्फ उठा सकते थे, क्योंकि वे मुसलमानी भाषाओंमें प्रवेश ही करने लगे थे।

खुसरोकी "खालिकबारी" फारसी छन्दमें लिखी गयी थी। नमूनेके लिये कुछ पद्य नीचे दिये जाते हैं :—

रसूल पैगम्बर जान बसीठ। यार दोस्त बोली जा ईठ॥
मर्द मनस जन है इस्तरी। कहत अकाल बबा है मरी॥
बिया बिरादर आव रे भाई। बिनशीं मादर बैठ री माई॥
तरा बुगुफ्तम मैं तुझ कह्या। कुजा बिमाँदी तू कित रह्या॥
राह तरीक सबील पहचान। अर्थ तिहूका मारग जान॥

रसूल अरबीमें और पैगम्बर फारसीमें दूतको कहते हैं। बसीठ हिन्दीमें दूतका नाम है, जैसे तुलसीदासजीने अङ्गदसे

कहलवाया है "दसकन्धर मैं न वसीठी आयउँ।" वसीठ वशिष्ठसे बना है और दौत्यको वसीठी कहते हैं। इष्टसे ईठ बना है, पर आजकल हिन्दीमें इसका प्रयोग नहीं होता। यद्यपि ईठको लोग भूल गये हैं, तथापि उसके संस्कृत रूप इष्टका प्रयोग करते हैं और इष्ट मित्र लिखते और बोलते हैं। अन्तिम बैतमें "तुझ कह्या" और "कित रह्या" आये हैं, जो आज भी दिल्ली और उसके आसपास कहीं कहीं बोले जाते हैं।

खुसरोकी पहेलियाँ और मुकरियाँ बड़े मार्केकी होती थीं और मुकरीके तो वे आविष्कारक ही माने जाते हैं। पहेलियोंमें वे उनके उत्तर और अपना नाम भी डाल दिया करते थे, यह उनकी विशेषता थी। देखिये :—

पहेली

तरवरसे एक तिरिया उतरी उसने ख़ूब रिझाया।
बापके उसके नाम जो पूछा आधा नाम बताया॥
आधा नाम पितापर वाका बूझ पहेली मोरी।
अमीर ख़ुसरो यों कहे अपने नाम निबोरी॥ (निबोरी)

चार महीने बहुत चले और महीने थोरी।
अमीर ख़ुसरो यों कहे तू बता पहेली मोरी॥ (मोरी)

जलकर उपजे जलमें रहे, आँखों देखा ख़ुसरो कहे॥ (काजल)

बीसोंका सिर काट लिया। ना मारा ना ख़ून किया॥ (नाख़ून)

मुकरी

सगरी रैन मोहिं सँग जागा ।
भोर भई तब बिछुरन लागा ॥
वाके बिछुरे फाटत हीया ।
ए सखी ! साजन ? ना सखी दीया ॥
सगरी रैन छतियनपर राखा ।
रङ्ग रूप सब वाका चाखा ॥
भोर भई तब दिया उतार ।
ए सखी ! साजन ? ना सखी हार ॥
वह आवे तब शादी होय ।
उस बिन दूजा और न कोय ॥
मीठे लागें वाके बोल ।
ए सखी ! साजन ? ना सखी ढोल ॥

दोसुखना हिन्दीका

बम्हन प्यासा क्यो ? गधा उदासा क्यों ? लोटा न था ।

जूता क्यो न पहना ? संबोसा क्यो न खाया ? तला न था ।

पान सड़ा क्यो ? घोड़ा अड़ा क्यों ? फेरा न गया ।

दोसुखना फारसी-हिन्दीका ।

सौदागररा चि मीबायद ? बूचेको क्या चाहिये ? (दूकान)

तिशनारा चि मीबायद ? मिलापको क्या चाहिये ? (चाह)

सौदागरको क्या चाहिये ? दूकान । और बूचेको—जिसके कान

न हो, उसे भी दो कान (दूकान) चाहिये। इसी तरह प्यासेको क्या चाहिये ? कुआँ। फारसीमें कुएँको चाह कहते हैं। मिलाप भी विना चाहके नहीं होता। इसलिये इस दोसुखनेका जवाब हुआ चाह।

.खुसरो बड़े विलक्षण पण्डित थे। फारसी-हिन्दीके दो सुखने से ही उन्होंने बस नहीं किया, बल्कि फारसी-हिन्दीकी गजल भी लिख डाली। उनकी यह गजल बहुत मशहूर है और जिस समय यह बनी होगी, हिन्दोंऔं मुसलमानोंने चारो तरफसे वाह-वाहकी झड़ी लगा दी होगी। वह गजल यों है :—

जिहाले मिस्कीं मकुन तगाफुल
दुराय नैना बनाय बतियाँ।
कि ताबे हिजराँ न दारम् ऐजाँ
न लेहु काहे लगाय छतियाँ॥
शबाने हिजराँ दराज चूँ .जुल्फ़ो
रोजे वस्लत चु उम्र कोताह।
सखा पियाका जो मैं न देखूँ
तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ॥
यकायक अज़ दिल दो चश्मे जादू
बसद फरेबम् बुबुर्द तस्कीन।
किसे पड़ा है जा जा सुनाये
पियारे पीको हमारी बतियाँ॥

चु शमा सोज़ाँ चु ज़र्रह हैराँ
ज़े मेहरे आँ महबेगुश्तम् आखिर ।
न नींद नैना न अङ्ग चैना
न आप आये न भेजे पतियाँ ॥
बहक्क रोज़े, विसाले दिलबर
कि दार मारा फरेब ख़ुसरो ।
लुभाय राखूं तु सुन ऐ साजन
जा कहने पाऊँ दा बोल बतियाँ ॥

अर्थ—आँखें छिपा कर और बातें बनाकर दुखियोकी दशाकी अवहेलना मत करो। ऐ मेरी जान, मैं विरहके सहनेमें असमर्थ हूँ, इसलिये क्यों नहीं छातीसे लगा लेती। विरहकी रातें तो ज़ुल्फ़की तरह लम्बी है और मिलनका दिन उम्रकी तरह छोटा है। ऐ सखी! जो मैं पियाको न देखूँ तो अँधेरी रातें कैसे काटूँ? उसने दो आँखोंके जादू और सैकड़ों जाल-फरेबोंसे मेरे दिलसे सहसा सन्तोषका हरण कर लिया। किसे पड़ी है जो प्यारे पतिको मेरी ये बातें जा सुनावे? अन्तको मैं उस चन्द्रमुखीकी कृपासे बत्ती में जलनेवाले ज़र्रेकी तरह हैरान हो गया, इससे न नैनोंमें नींद है और न शरीरको चैन है। वह न आप आते हैं और न पत्र भेजते हैं। ऐ ख़ुसरो, मुझे सचमुच (अथवा ख़ुदाकी कसम) मुझे प्रियतमके मिलनेके दिनने धोखा दिया। ऐ साजन! सुन, जो मैं दो बातें कर पाऊँ तो उसे लुभा रखूँ।

यह बड़े ही खेदकी बात है कि भाषामें बहुतसा साहित्य

निर्माण हो चुकनेपर भी जहाँ तक हिन्दवी या हिन्दीका सम्बन्ध है, कबीरके पहलेतक कुछ नहीं हुआ। सन्त कबीरके बाद दूसरे सन्त नानक हुए और इनके बाद पानीपतकी दूसरी लड़ाईतक हिन्दी अन्धकारमे रही। इस समय मुगलोंका साम्राज्य स्थापित हुआ। अकबरका शासन-काल हिन्दीके उत्थानका काल समझना चाहिये, जब बहुतसे कवियोने अनेक बोलियोमे रचना की।

अकबरके शासन-कालमे उच्चकोटिका साहित्य निर्माण हुआ, क्योंकि साधारण कवि ही नहीं, बादशाह और उनके हिन्दू-मुसलमान मंत्री भी हिन्दीमे कविता करते थे। बीरबर या बीरबल अकबरके बड़े मुँहलगे थे और उनकी मृत्युपर बादशाह बड़े शोकाकुल हुए थे और अपना मनोभाव इस सोरठे द्वारा व्यक्त किया था :—

> सब कछु दीनन दीन, एक दुरायो दुसह दुख।
> सोउ दै हमहि प्रवीन, नहि राख्यो कछु बीरबर॥

बीरबर अपनी वर्ष-गाँठ पर अपना सर्वस्व दान कर दिया करते थे। युद्धपर जाते समय भी उन्होंने यही किया था। वहीं वे काम आये। इसका दुःख अकबरको बहुत हुआ और वही इस सोरठेमें प्रकट किया गया है।

अकबरके महामंत्री नवाब अब्दुर्रहीम खानेखानाँ थे। ये भी अमीर ख़ुसरोकी तरह बड़े विलक्षण पण्डित थे। यह तो नहीं कहा जा सकता कि अमीर साहब और नवाब साहबमें किसका

पाण्डित्य अधिक था, परन्तु नवाब खानेखानाँको हिन्दीकी अनेक उपभाषाओंका अच्छा ज्ञान था। इन्होंने ब्रजभाषा, राजपुतानी और खड़ी बोलीमें भी कविता की है। और तो क्या, जहाँ अमीर ख़ुसरोने फारसी-हिन्दीकी खिचड़ी पकायी है, वहाँ इन्होंने संस्कृत-हिन्दी मिश्रित कविता की है। छन्द भी संस्कृत ही रखा है।

ब्रजभाषा

रहिमन जो ओछो बढ़ै तो अति ही इतराय।
प्यादेसे फर्जी भयो, टेढ़ो-टेढ़ो जाय॥
यों रहीम सुख होत है, बढ़यो देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियान लखि, आँखिनको सुख होत॥
छार मुण्ड मेलत रहत, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज रिषिपत्नी तरी, सो ढूँढत गजराज।

हिन्दी—खड़ी बोली

कलित ललित माला वाजवाहिर * जड़ा था।
चपल चखनवाला चाँदनीमें खड़ा था॥
कटितट विच मेला पीत सेला नवेला।
अलिवन अलबेला यार मेरा अकेला॥

---

* वाजवाहिर = रत्नसे।

संस्कृत-हिन्दी मिश्रित

दृष्टा तत्र विचित्रता तरुलता, मैं था गया बागमें ।
काचित्तत्र कुरङ्गशावनयना, गुल तोडती थी खड़ी ॥
उन्मद्भ्रू धनुषा कटाक्षविशिखै, घायल किया था मुझे ।
तत्सीदामि सदैव मोहजलधौ, हे दिलगुजारी शुकर ॥
एकस्मिन्दिवसे ऽवसानसमये, मैं था गया बागमें ।
काचित्तत्र कुरङ्गबालनयना, गुल तोडती थी खड़ी ॥
तां दृष्ट्वा नवयौवना शशिमुखीम्, मैं मोहमें पड़ गया ।
न जीवामि त्वया विना शृणु, सखे, तू यार कैसे मिले ॥

खानेखानाँने राजपुतानेकी बोलीमें जो दोहा बनाकर महाराना अमरसिंहको भेजा था, उसकी चर्चा पहले हो चुकी है । वे ज्योतिषी भी बड़े भारी थे, इसलिये ज्योतिष सम्बन्धी कविता भी की थी ।

'खेट कौतुक जातकम्' नामक सवा सौ श्लोकोंकी उनकी पुस्तिका प्रसिद्ध है । इन श्लोकोंकी भाषा संस्कृत फारसी मिश्रित है । राजयोगाध्यायके कुछ श्लोकोंमे हिन्दीकी भी खिचड़ी पकायी गयी है । उसीसे ये उद्धृत किये जाते हैं :—

यदा मुश्तरी कर्कटे वा कमाने ।
यदा चश्मखोरा जमीवासमाने ॥
तदा ज्योतिषी क्या करै क्या पढेगा ।
हुआ बालका पादशाही करैगा ॥ *

---

* जिसकी जन्मपत्रीमें कर्क वा धनके बृहस्पति हो और दसवें स्थान

यदा शत्रुखाने पड़ै उच्चका ।
करै खाक दौलत फिरै जा बजा ॥

इसी तरहका एक पद्य तो बिलकुल हिन्दीहीमे है, देखिये :—

यदा भाग्य मालिक भले घर पड़ैं । कमाकर सुदौलत खज़ाने भरैं ॥
करैंगे जवख्शी अमीरी सुफल । वजीरी अमीरी करैं बेफिकर ॥

अकबरके शासनकाल और उसके बाद भी कई बहुत अच्छे मुसलमान कवि हुए, पर इनकी कविता हिन्दू ढङ्गकी और भाषामे ही हुई। .खुसरो या खानेखानॉकी जोडका खड़ीबोलीका कवि नही हुआ। रसखान भी खानेख़ानोंके समसामयिक थे, परन्तु इनकी कविता किसी परम वैष्णवकी कवितासे उन्नीस नही थी। यह कवित्त इनका वहुत प्रसिद्ध है :—

मानुष हौं तो वहीं रसखान,
बसौं मिलि गोकुल गाँवके ग्वारन ।
जौ पसु हौं तो कहा वस मेरो,
चरौं नित नन्दकी धेनु मँझारन ।
पाहन हौं तौ वही गिरिकौ,
जो कियो कर छत्र पुरन्दर धारन ।
जौ खग हौं तौ बसेरो करौं,
वा कलिन्दिजा कूल कदम्बकी डारन ॥

में बृहस्पति हों, तो ज्योतिषी क्या लिखे पढेगा, क्योंकि वह लड़का पादशाही करेगा ।

गंग कवि अकबरके समसामयिक थे और कहा जाता है कि नवाब खानेखानाँने ३६ लाख रुपये इन्हे इनाममे दिये थे। इनकी प्रशंसामे उनका यह कवित्त था :—

राजे भाजे राज छोड़ि रन छोड़ि राजपूत,
रौती छोड़ि राउत रनाई छोड़ि रानाजू।
कहै कवि गंग हूत्र समुदके चहूँ कूल,
कियो न वरै कबूल तिय खसमाना जू।
पश्चिम पुरतगाल कासमीर अवताल
खक्खरको देस बाढ़्यो भक्खर भगाना जू।
रूम साम लोम सोम वलक वदाऊशान
खैल फैल खुरासान खीझै खानखाना जू॥

गंग कवि अरबी-फारसी शब्दोका प्रयोग तो अपनी कविता मे करते ही थे, पर इन्होने हिन्दी-फारसी मिश्रित कविता भी की थी। (खुसरोने फारसी-हिन्दी मिश्रित की थी।) देखिये, एक आधा कवित्त इस प्रकार है :—

कौन घरी करिहैं विधना
जब रूए औं दिलदार मुबीनम्।
आनन्द होइ तबै सजनी
दर वस्ले यार निगारनशीनम्।

गंग कवि अनेक भाषाएँ जानते थे और इसलिये इनकी कविताामे अनेक प्रकारकी भाषाएँ भी रहती थीं। कविवर भिखारीदासका यह दोहा प्रसिद्ध है :—

तुलसी गग दोऊ भये सुकविनके सरदार।
जिनके काव्यनमें मिली भाषा विविध प्रकार॥

गगके बाद हिन्दू कवियोकी भाषामे फारसी-अरवी शब्द और भाव जोरोके साथ आने लगे थे। इनके प्रायः सौ वर्ष बाद सं० १७६० मे रसनिधि (दतियाके जागीरदार पृथ्वीसिंह) हुए है। इनकी कविता देखिये :—

जेहि मग दौरत निर्दई, तेरे नैन कजाक।
तेहि मग फिरत सनेहिया, किये गरेवॉ चाक॥

कजाक—कज्जाक शब्दका अपभ्रष्ट रूप है, जो फारसी है। हिन्दीमे यह शब्द बहुत प्रचलित है। कवितामे तो कजाकी या कजाखी शब्द बहुत आता है, जैसे "करत कजाखी कजरारे नैन कोरदार।" परन्तु बोलचालमे इसका प्रयोग 'बदमाशी' के लिये होता है। गरेवान् अँगरखेकी चोलीको कहते है और चाक करना फाड़ना है। यह भाव बिलकुल फारसी है। गरेवॉ चाक दिखानेका अर्थ अपना हृदय खोल देना है।

शाहजहॉ अकबरका पोता था, पर कविता हिन्दुओकीसी ही करता था। जब औरङ्गजेबने इसे हर तरहसे तङ्ग करना शुरू किया, तब इसने दुखी होकर यह कवित्त बनाया था :—

जन्मत ही लख दान दियो अरु नाम धर्यो नवरङ्गविहारी।
बालहिंसो प्रतिपाल कियो अरु देश मुलुक्क दियो दल भारी।
सो सुत वैर बुझै मनमें धरि हाय दियो बँधसारमें डारी।
शाहजहॉं विनवै हरिसों बलि राजिवनैन रजाय तिहारी॥

औरंगजेब तो नहीं, पर उसकी पुत्री शाहजादी जेबुन्निसा बेगमके हिन्दीमे कविता करनेका पता लगता है। कहते हैं कि "नैन-विलास" कविता-ग्रन्थ की कर्त्री ये ही है। इस ग्रन्थका अन्तिम दोहा इस प्रकार वताया जाता है :—

> जेबुन्निसा जहानमें, दुख्तर आलमगीर।
> नैन विलास विलासमें, खास करी तहरीर॥

इनके सिवा और भी कितने ही मुसलमान हिन्दी कवि हो गये है, जिनमे दीवान सैयद रहमतुल्ला, सैयद गुलाम नवी "रसलीन", मीर अब्दुलवाहिद "जौकी", मुहम्मद आरिफ, मीर अब्दुलजलील "जलील", सैयद निजामुद्दीन "मधुनायक" और सैयद बर्कतुल्ला "प्रेमी" विशेष उल्लेखनीय है।

भिखारीदास रसनिधिके समसामयिक थे, क्योंकि इनका जन्म संवत् १७९५ विक्रमी है। इस हिसावसे ये अकबरके कोई सवा सौ वर्ष बाद हुए है। इनके समयमे अरवी फारसी शब्द हिन्दी कवितामे स्वच्छन्दतासे प्रयुक्त होते थे, परन्तु कभी-कभी बड़े कठिन शब्दोका प्रयोग कर दिया जाता था। इसलिये इन्होंने अपने "काव्यनिर्णय" ग्रन्थमे अति सरल फारसी शब्दोंके व्यवहारकी अनुमति दे दी थी। इनका कहना था :—

> ब्रजभाषा भाषा रुचिर, कहैं सुमति सब कोय।
> मिलै संस्कृत पारस्यो, पै अति सुगम जु होय॥

इसके बाद एक मिश्रित भाषा ही तैयार हो गयी, जिसमे

हिन्दीकी अंगभूत भाषाओंके साथ अरबी-फारसी मिलायी जाती थी। इस विषयमे एक दूसरे कविका कथन है :—

अन्तरवेदी नागरी, गौड़ी पारस देश।
अरु अरबी जामैं मिलैं, मिश्रित भाषा भेश॥

इसलिये हिन्दीमे अरबी फारसी शब्द बेरोक-टोक चल पडे थे। इसका कारण यह था कि राज्य मुसलमानोका था और हिन्दुओंने नौकरी चाकरीके लिये फारसी अरबी सीख ली थी। इच्छा वा अनिच्छापूर्वक अनेक शब्द भाषामे लोग चला रहे थे और इसलिये कवितामे अनुप्रास और यमकके लिये इनका प्रयोग उचित प्रतीत होता था। इस प्रकार हिन्दी खिचड़ी भाषा बनने लगी।

हिन्दी और उर्दू

अमीर .खुसरोने अपनी खालिकवारी और पहेलियोमे जिस भापाको हिन्दी या हिन्दवी कहा है, वह उत्तर भारतके वड़े भारी भागकी भापा थी। नागरिकोकी वोलचाल और लिखा-पढ़ीमे यही काम आती थी, इसलिये यह रेख्ता या पुष्ट भापा कहाती थी। यह रेख्ता शब्द भी फारसीका ही है। शम्सउल-उलेमा मौलाना मुहम्मद हुसैन साहव आजाद मरहूम फर्माते है—"इस जवानको रेख्ता भी कहते हैं, क्योंकि मुख्तलिफ (भिन्न-भिन्न) जवानो ने इसे रेख्ता किया है। जैसे दीवारको ईंट, मिट्टी, चूना, सफेदी वगैरहसे पुख्ता करते है या यह कि रेख्ताके मानी है गिरी पड़ी परेशान चीज। क्योकि इसमे अल्फाज परेशान जमा है, इसलिये इसे रेख्ता कहते थे।" (आवे हयात् पृष्ठ २१)।

फैलनने इस शब्द का अर्थ लिखा है—"मर्दों की हिन्दुस्तानी बोली।"* परन्तु वेटका कहना है कि "हिन्दुस्तानी भापा, मिश्रित होनेके कारण रेख्ता कहाती है।" †

---

* The Hindustani language as spoken by men (Fallon)

† The Hindustani language (being a mixed one) is called *rekhta* (Bate).

मुंशी दुर्गाप्रसाद नादिर "खजीनतुल उलूम" में लिखते है कि "रेख्ता बमानी गिरे हुएके है, पस जो जबान अपनी असलियत से गिर जाय उसको 'जबान-रेख्ता' बोलते है, चुनाँचे जैसे फारसी जबानमे अरबीके लुगत शामिल हुए, इसे जबान रेख्ता-फारसी कहते है। इसी तरह जबान रेख्ता-हिन्दीको जबान उर्दू समझते है।" (प॰ पद्मसिंह शर्मा कृत "हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी")

फैलनने रेख्तीकी * भी चर्चा की है और उसका अर्थ बताया है—"स्त्रियोंके सुरों और मुहावरोंमें उनके विशेष प्रकारके भावों और विशेषताओंसे युक्त लिखी हुई हिन्दुस्तानी कविता।" रेख्ता एक प्रकारका छन्द भी होता है और कबीरने बहुतसे रेख्ते लिखे भी हैं। रेख्ती यदि स्त्रियोंकी कविताकी भाषा हो, तो पुरुषोंकी कविताकी भाषाको रेख्ता कहना अनुचित नहीं है। यही नहीं, उर्दू कवियोंने हिन्दी अर्थमें रेख्ता शब्दका प्रयोग भी किया है, जैसे—"शेर बेमानीसे बिहतर है तो कहना रेख्ता" (आबेहयात पृष्ठ २१) अभिप्राय यह है कि फारसीमें जो लोग अर्थरहित शेर लिखते है, उससे बिहतर है कि वे रेख्ता कहे अर्थात् हिन्दीमें कविता करे। स्व॰ पण्डित पद्मसिंह शर्माने अपने "हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी" शीर्षक व्याख्यानमें लिखा है—" 'रेख्ता'

---

* Hindustani verse written in the tones and idioms of women with their peculiar sentiments and characterestice (Fallon).

शब्दका प्रयोग सबसे पहले 'शाही' दक्खिनीके कलाममें मिलता है, जो 'वली' दक्खिनी से पूर्व, आदिलशाह अव्वलके समय (सन १५०६ ई०) में हुआ है। वा: को दूसरे कवि लेखकोंने भी रेख्तेका प्रयोग अधिकतासे किया है। मीर तकी मीरने अपने 'तजकरे निकातुश्शोरा'में और 'कायम' चाँदपुरी ने 'मखजने-निकात'में बार-बार उर्दू नज्म (कविता) के लिये 'रेख्ता' ही लिखा है।" (पृष्ठ २१।२२) रेख्तेमें पद्यकी भाषा ही पहले समझी जाती थी। लल्लूलालजीने भी प्रेमसागरकी भाषाको रेख्तेकी बोली कहा है।

अब इसमें सन्देह नहीं कि यही रेख्ता (खुसरोकी हिन्दी या हिन्दवी) वर्त्तमान हिन्दी और उर्दूकी जड़ है, जो आर्ष-अपभ्रंश प्राकृतसे उत्पन्न हुई है। इसका हिन्दू नाम अन्तर्वेदी नागरी था, क्योंकि गङ्गा यमुनाके अन्तर्वेद या दोआबे में बसे हुए नागरिकों या शहरी लोगोंकी यह भाषा थी। उस समय हिन्दू लोग इसे साहित्य-रचनाके काममें नहीं लाते थे सही, पर यह सकल बोधगम्य (आमफहम) थी और हिन्दू-मुसलमान दोनों इसे बोलते थे। जब मुसलमान इस देशमें आये, तब उन्हें अपनी भाषामें इसकी पुट दे-देकर काम चलाना पड़ा। साथ ही जब मुसलमानी राज इस देशमें जम गया और अरबी, फारसी, तुर्की आदि मुसलमानी भाषाओंके बहुतसे शब्द भाषामें आ गये और हिन्दुओंने भी फारसी पढ़-पढ़कर उसके शब्दोंका प्रयोग अपनी भाषामें प्रारम्भ किया, तब एक

मिश्र भाषा बन गयी। आबेहयातमे लिखा है कि "पन्द्रहवीं सदी-मे सिकन्दर लोदीके जमानेमे कायथ फारसी पढ़कर शाही दफ्तरमे दाखिल हुए और अब इन लफजोको उनकी जबानो-पर आनेका ज्यादा मौका मिला।"

हिन्दुओंमे फारसीकी शिक्षा बढ़ जानेके कारण अथवा किसी अन्य विचारसे सं० १६३८ अथवा सन् १५८१मे राजा टोडर-मलने महकमा मालके दफ्तर हिन्दीके बदले फारसीमे कर दिये। स्वर्गवासी मुंशी देवीप्रसाद मुन्सिफकी इस बातका समर्थन प्रोफे-सर ब्लाकमैन भी करते है। इन्होने "कलकत्ता रिव्यूमे" लिखा था कि इस समयतक मालगुजारीके महकमेके सब कागजात – दस्तूर-उल-अमल हिन्दीमे थे, पर राजा टोडरमलके हुक्मसे सब फारसीमे कर दिये गये। टोडरमल भी भाषामे कविता करते थे, इसलिये हिन्दीका अहित करनेके लिये उन्होने फारसीका प्रवेश कराया, यह तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु "विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्" कहावत चरितार्थ हुई। शाही दरबारमे हिन्दीके बदले फारसीका बोलबाला हो गया। हिन्दीका गौरव न रहा। यद्यपि इसमे कविता होती रही और मुसलमान कवि और सम्राट् भी कविता करते रहे, तथापि इसकी कदर न रही। इससे जो हानि हुई यदि उसकी कल्पना टोडरमलको होती, तो देशकी यह भयंकर हानि न होती। परन्तु हिन्दुओने विचार करके जैसे और बहुतसे काम नहीं किये, वैसेही यह भी नहीं किया।

खालिकबारी और पहेलियाँ आदि .खुसरोने फारसी अक्षरोमे

ही लिखी थी। और तो क्या, पद्मावतकी जो प्रति मिली, वह भी फारसी अक्षरोंमें ही मिली। चन्द्रशेखर वाजपेयीका "हम्मीरहठ" काव्य भी फारसी अक्षरोंमें ही मिला। इससे जान पड़ता है कि मुसलमान हिन्दी तो लिखते थे, पर फारसी अक्षरोंमें। इसके प्रमाणमें हम खुसरोकी यह पहेली पेश करते हैं :—

अन्धा गूँगा बहरा बोले, बहरा आप कहाये।
देख सफेदी होय अँगारा, गूँगेसे भिड़ जाये॥
बाँसका मन्दिर वाका बागा, बाशेका वह खाजा।
संग मिले तो सिरपर राखें, वाको राव और राजा॥
सीधा करके नाम बताया, तामें बैठा एक।
उलटा सीधा हिर फिर देखा, वही एकका एक॥
भेद पहेली मैं कही, तू सुन ले मेरे लाल।
अरबी हिन्दी फारसी, तीनो करो खयाल॥

यह लालकी पहेली है। हिन्दी, अरबी और फारसीमें लाल किस-किसको कहते हैं, यह जाने बिना इसका अर्थ नहीं हो सकता। अरबीमें लाल मुर्खको कहते हैं और फारसीमें गूंगे बहरेको। हिन्दीमें एक छोटीसी चिड़िया लाल कहाती है। यह पिंजरेमें रहती है और पिंजरा बहुधा बाँसका बनता है, इसलिये कवि इस लालके घरको—वासेको बाँसका मन्दिर बताता है। फिर बाशा छोटे बाजको कहते हैं। यह लालको मारकर खा जाता है, इसीसे उसे बाशेका खाजा-खाद्य बताया। चूंकि लाल-मानिक रत्न होता है, इसलिये रावराजाओंके मुकुटोंमें

रखा जाता है। सीसी करनेसे मुँह से लाल-लाला या राल टपकती है, इससे वह भी लाल हुई और लाल हिन्दीमे बच्चेको भी कहते हैं। इस प्रकार हिन्दीमे लालके चिड़िया, मानिक, लाला (लार) और बच्चा ये चार अर्थ हुए। फारसी और अरबीमे एक ही एक अर्थ हुआ। परन्तु जो सबसे मार्केकी बात कविने कही है, वह यह है कि उलटा सीधा चाहे जैसे पढ़ो, वह लाल ही रहेगा। यदि ख़ुसरोने यह पहेली हिन्दीमे लिखी होती तो, यह बात कैसे होती ? फारसी अक्षरोमे, "लाम" "ऐन" और "लाम" लिखनेसे लाल बनता है। क्योकि आगे पीछे लाम और बीचमे ऐन है। हिन्दीमे "लाल" को उलटकर पढ़े तो लला हो जाय। फारसी अक्षरोमे हिन्दीके इस तरह लिखे जानेसे ही उर्दूके महावृक्षका बीजारोपण किया गया। दिल्लीके मीर अम्मनने १८०२ मे फ़ोर्ट विलियम कॉलेजके कप्तान गिलक्रिस्तके आदेशपर अपनी जो प्रसिद्ध पुस्तक "बागो बहार" नामसे लिखी थी, उसके दीबाचे (भूमिका) मे उन्होने अपनी समझसे उर्दूका इतिहास दिया है। वे लिखते है :—

"हकीकत उर्दू जबानकी बुजुर्गोके मुँहसे यूँ सुनी है कि दिल्ली शहर हिन्दुओके नजदीक चौजुगी है। वहाँ राजा, परजा कदीमसे रहते थे और अपनी भाखा बोलते थे। हजार बरससे मुसलमानोका अमल हुआ। सुलतान महमूद गज़नवी आया। फिर गोरी और लोदी बादशाह हुए। इस आमदोरफ्तके बाइस कुछ जबानोने हिन्दू मुसलमानकी आमेजिश पायी। आखिर

अमीर तैमूरने.... हिन्दुस्तानको लिया। उनके आने और रहने से लश्करका बाज़ार शहरमे दाखिल हुआ। इस वास्ते शहरका बाजार उर्दू कहलाया।. .जब अकबर बादशाह तख्तपर बैठे, तब चारो तरफके मुल्कोसे सब कौम कद्रदानी और फैज़-रसानी इस खान्दान लासानीकी सुनकर हुजूरमे आकर जमा हुए। लेकिन हरेककी गोयाई और बोली जुदी-जुदी थी। इकट्ठे हानेसे आपसमे लेन-देन, सौदा सुल्फ, सवाल जवाब करते एक ज़बान उर्दूकी मुकर्रर हुई।"

मीर अम्मनके अनुयायी उनसे भी आगे बढ़ गये और कहने लगे कि इसका नाम रेख्ता शाहजहाँके जमानेमे मुसलमान कवियोने रखा था!

अब इतिहासके प्रकाशमे इस वक्तव्यको देखिये। हम देख चुके है कि अकबर या मुगलोका जब पता भी न था और उनसे शताब्दियो पहले अमीर .खुसरोने ऐसी भाषामे रचना की थी जो रेख्ता या उर्दूसे भिन्न नहीं है और जिसे वे हिन्दी या हिन्दवी कहते थे। अकबर सन् १५५६ मे तख्तनशीन हुआ और शाहजहाँ-ने १६२७ से १६५८ तक राज किया। पर अमीर .खुसरो अकबर और शाहजहाँके जन्मके बहुत पहले ही सन् १३२५ मे कूच कर गये और .खुसरोकी भाषा यदि वलीसे बेहतर नहीं, तो वैसी ही है। .खुसरोके बाद कबीरका नम्बर है। ये १३९८ मे काशीमे पैदा हुए थे। विद्वत्ताकी दृष्टिसे खुसरो और कबीरकी तुलना नहीं हो सकती, पर ये बड़े सन्त थे और प्रादेशिक बोलियोमे ही नहीं, हिन्दीमे

भली-भाँति अपने विचार प्रकट कर सकते थे। उन्होंने पद और साखियाँ ही नहीं लिखीं, रेख्ते भी लिखे, जिससे सिद्ध है कि उस समय रेख्ता शब्द प्रचलित था। उनके कुछ पद्य ये हैं :—

दुखमें सुमिरन सब करै, सुखमें करै न कोय।
जो सुखमें सुमिरन करै, तो दुख काहेको होय॥
यह तो घर है प्रेमका, खालाका घर नाहिं।
सीस उतारै भुइँ धरै, तब पैठै घर माहिं॥
पाया कहैं ते बावरे, खोया कहै ते कूर।
पाया खोया कुछ नहीं, ज्योंका त्यों भरपूर॥
सूरा सोइ सराहिये, लडै धनीके हेत।
पुर्जा पुर्जा कटि मरै, तऊ न छाँडै खेत॥

बनारसी बोलीमें

अँखियरवामें ठाढि गोरी का करलू॥ टेक॥

जब लगि तेल दियामें बाती,
येहि अँजोरवा बिछाय धलतू।
मनका पलँग सन्तोष बिछौना,
ज्ञानकै तकिया लगाय रखतू॥
जरि गया तेल, बुझाई गई बाती,
सुरतमे सुरत समाय रखतू।
कहै कबीर सुनौ भाई साधो,
जोतियामें जोतिया मिलाय रखतू॥

रेख्ता

विना वैराग कहु ज्ञान केहि कामका,
पुरुष बिनु नारि नहि सोम पावै।
स्वाँग तो साहुका काम है चोरका,
कपटकी झपटमें बहुत धावै ॥ १ ॥
बात बहुत कहै झूठ छूटै नहीं,
मुखके कहे कहा खाँड खावै।
कहै कबीर जब काल गढ घेरिहै,
बात वहु बकै सब भूलि जावै ॥ २ ॥

हीरा पायो गाँठ गठियायो, बार-बार वाको क्यों खोलै ॥ १ ॥
हल्की थी जब चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोलै ॥ २ ॥
सुरत कलारी भइ मतवारी, मदवा पी गई बिन तोलै ॥ ३ ॥
हंसा पाये मान सरोवर, ताल तलैया क्यों डोलै ॥ ४ ॥
तेरा साहिब है घट माही, बाहर नैना क्यों खोलै ॥ ५ ॥
कहै कबीर सुनो भइ साधो, साहिब मिल गये तिल ओल ॥ ६ ॥

कबीरके बाद नानक है। इनका जन्म कबीरसे ७१ वर्ष बाद सन् १४६९ मे हुआ था और इन्होने ऐसी भाषामे लिखा जो पञ्जाबीकी कुछ पुट होनेपर भी खड़ीबोली या रेख्ता ही है। इसका उदाहरण निम्नलिखित पद्य है :—

इस दमदा मैंनू की बेभरोसा,
आया आया न आया न आया।

या संसार रैनदा सुपना,
कही दीखा कहिं नाहि दिखाया ॥
सोच विचार करै मत मनमें,
जिसने ढूँढा उसने पाया ।
नानक भगतनके पद परसे,
निस दिन रामचरन चित लाया ॥

यदि रेख्ता खडी बोलीका नाम न होता, तो कबीर इस शब्दका प्रयोग न कर सकते। इसलिये तात्पर्य यह हुआ कि यद्यपि फारसीके कवियोने हिन्दीको रेख्ता नाम दिया था, तथापि यह घटना शाहजहाँके नहो, पर सम्भवतः सिकन्दर लोदीके जमानेकी है, जब कायस्थोने फारसी पढ़ना आरम्भ किया था।

यह रेख्ता जैसा हम पहले ही देख चुके है, फारसी अक्षरोमे मुसलमानो द्वारा लिखी जाती थी और हिन्दुओके लेख हिन्दी अर्थात् नागरी अक्षरोमे होते थे। जिन मुन्शी नौनिधरायकी "दस्तूरे सूबियाँ" और "मसदर फयूज" किताबे मकतबोमे फारसी आरम्भ करनेवालोको पढ़ायी जाती थीं, उन्होने मसदर फयूजकी अपनी भूमिकामे स्पष्ट ही उर्दूको हिन्दी कहा है। वे कहते है :—

करूँ बाद इसके बहिन्दी जबाँ।
कई कायदे फारसीके बयाँ॥

उर्दू कविताके प्रसिद्ध मुसलमान रचयिताओने उर्दूको हिन्दी या रेख्ता ही कहा है। जैसे :—

क्या जानूँ लोग कहते हैं किसको सरूरे कल्ब ।
आया नहीं है लफ्ज़ यह हिन्दी ज़बाँके बीच ॥ (मीर)
मतलबकी मेरे यार न समझे तो क्या अजब ।
सब जानते हैं तुर्ककी हिन्दी ज़बाँ नहीं ॥ (आतिश)

एल्लोरके बाकर आगाहके "दीवाने हिन्दी" के सिलसिलेमे मि० मुहम्मद अब्दुल कादिर सरवरी एम० ए०, एल-एल० बी० लिखते है :—

"दीवानके सरवरक (मुखपृष्ठ) पर और ख़ुद अशयारमे (शेरोमे) भी कहीं-कहीं 'हिन्दी' हीका लफ्ज़ इस्तेमाल किया गया है। ताहम यह मालूम रहे कि इससे मुराद उन शाइरोकी उर्दू होती थी, क्योकि वह उर्दूको हिन्दीसे कोई जुदा चीज नहीं समझते थे।"

वे आगे चलकर कहते है :—

"हिन्दी या हिन्दवी इसका कदीमतरीन नाम था। उर्दू और दखनीके लिये भी यह लफ्ज़ बिला तकल्लुफ इस्तेमाल होता था, गोया 'उर्दू', 'हिन्दी' और 'दखनी' एक ही ज़बानके मुख्तलिफ नाम थे। इस ज़बानकी शाइरी रेख्ता कहलाती थी।"—रिसाला उर्दू अप्रेल १९२९।

इस प्रकार एक ही भाषा लिपिकी भिन्नताके कारण हिन्दी और उर्दू कहाती थी और ज्यो-ज्यो समय बीतता गया, हिन्दीका उर्दू रूप साधारणतः फारसीसे पुष्ट हुआ और अन्तमे बिलकुल जुदा भाषा ही बन गया। यदि एक ही लिपि होती तो हिन्दी

और उर्दूके पक्षपातियोका अप्रिय झगड़ा न उठ खड़ा होता। यहाँ यह विचारना अनुचित न होगा कि अन्य प्रदेशोकी भाषाओ—विशेषकर गुजरात और सिन्धकी भाषाओपर भी फारसीका प्रभाव पड़नेपर भी वहाँ एक ही भाषा रही और दूसरी भाषा उत्पन्न न हुई। गुजराती भाषा गुजरातकी है। गुजरातियों मे हिन्दू और मुसलमान ही नहीं, पारसी भी है। पारसियोकी बोली और लिखावटमे फारसी शब्दोका प्रयोग बहुतायतसे होता है और गुजराती साहित्यिकोको शिकायत है कि पारसियो की भाषा और वर्ण-विन्यास (हिज्जे) दोषपूर्ण है। हिन्दू-गुजराती और पारसी-गुजरातीमे कुछकुछ हिन्दू-हिन्दी और मुसलमानी हिन्दी-कासा ही अन्तर है, परन्तु लिपि दोनोकी एक ही होनेके कारण यह अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता और वहाँ एक ही भाषा है।

सिन्धीकी अवस्था विलक्षण है। उसकी कोई अपनी वर्णमाला नहीं है और वह अरबी अक्षरोमे लिखी जाती है। पर यह मजेकी बात है कि अक्षरोके ऊपर नीचे नुक्ते या बिन्दीके बहुल प्रयोग द्वारा इन अरबी अक्षरोमे संस्कृत अक्षरोके उच्चारण बना लिये गये है। हिन्दू और मुसलमान दोनो एक ही भाषा बोलते है और यदि सिन्धी भाषाकी कोई आर्यलिपि होती तो सिन्धमे भी हिन्दू मुसलमानोमे भाषा सम्बन्धी झगड़ा खड़ा होता।

हिन्दी उर्दूमे लिपिका तो मुख भेद है ही, परन्तु जो विशेष विचारणीय बात है वह यह है कि उर्दू, फारसी वा इस्लामी सस्कृतिके हिमायतियो और हिन्दी आर्य वा भारतीय

संस्कृतिके अनुयायियोके लिये लिखी जाती है और तदनुसार दोनोमे स्वदेशी वा विदेशी भाषाओ और भावोंकी पुट रहती है। इसीलिये राजा लक्ष्मणसिहने लिखा है कि "हमारे मतमे हिन्दी और उर्दू दो बोली न्यारी-न्यारी है। हिन्दी इस देशके हिन्दू बोलते है और उर्दू यहाँके मुसलमानो और फारसी पढ़े हुए हिन्दुओंकी बोल-चाल है। हिन्दीमे संस्कृतके पद बहुत आते है, उर्दूमे अरबी फारसीके।"* भाषामे संस्कृत, तद्भव तथा देशज शब्दो अथवा अरबी, फारसी और तुर्की शब्दोंकी न्यूनाधिकताका कारण भी यही है। हिन्दू मुसलमानोंकी साधारण बोलचालकी भाषा एक ही है। देहातोंमे रहनेवाले मुसलमान तो हिन्दुओंकी तरह ग्राम भाषाओंका व्यवहार करते ही है। परन्तु साहित्यिक भाषाएँ हिन्दू मुसलमानोंकी अलग-अलग है और इसीलिये दोनोमे सन्निकटताके बदले दूरता बढ़ती जा रही है। दोनोके फिर एक होनेकी कल्पना नही की जा सकती, क्योकि कुछ तो आवश्यकता और बहुत अधिक मनोवृत्ति अलगके ही पक्षमे है।

इस विषयमे शम्सुल उलेमा मौलाना मुहम्मद हुसैन साहब आज़ाद फर्माते है :—

"उर्दू का दरख्त अगर्चे संस्कृत और भाषाकी जमीनमे उगा, मगर फारसीकी हवामे सरसब्ज हुआ है। अलबत्ता मुश्किल यह हुई कि बेदिल और नासिरअलीका जमाना करीब गुज़र चुका था

---

* रघुवंश के गद्य हिन्दी अनुवादकी भूमिका सन् १८७८।

और उनके मोतकिद (अनुयायी) बाकी थे। वे इस्तयारो (रूपको) और तशबीह (उपमा) के लुत्फसे मस्त थे। इस वास्ते गोया उर्दू भाषामे इस्तयारो और तशबीहका रंग भी आया और बहुत तेजीसे आया। यह रंग अगर उसी कदर आता कि जितना चेहरेपर उबटनका रंग या आँखोमे सुर्मा तो .खुशनुमाई (देखने) और बीनाई (ज्योति) दोनोको मुफीद था। मगर अफसोस कि उसकी शिद्दतने (अधिकताने) हमारी कुव्वत बयानकी (वर्णन करनेकी शक्तिकी) आँखोको सख्त नुकसान पहुँचाया और ज़बानको खयाली बातोसे फकत तोहम्मातका स्वाँग बना दिया। नतीजा यह कि भाषा और उर्दूमे ज़मीन आसमानका फर्क हो गया।"

(आबेहयात पृष्ठ ५२)

मौ० अब्दुलहक्की राय है कि "अगर उर्दूको अरबी नशोनुमा (साहित्यिक विकास) दकनमे हासिल न हुई होती (जहाँ की भाषाएँ तैलङ्गी और कानड़ी, अनार्य थी) तो बहुत मुमकिन था कि बजाय फारसी अरूजके (पिंगलके) हिन्दी अरूज होता, क्योंकि दोआबा गङ्गो-जमन मे (अन्तर्वेद मे) हर तरफ हिन्दी थी और मुल्ककी आम जबान थी।"

('उर्दू' जनवरी १९२२)

मुसलमानी हिन्दी या उर्दू

बहुत दिनो तक हिन्दू देवनागरी या हिन्दी अक्षरोंमे और मुसलमान फारसी अक्षरोमें हिन्दी लिखते रहे। कितने ही मुसलमान कवियोने हिन्दुओंकी तरह ही हिन्दीमे कविता भी की। परन्तु धीरे-धीरे उनकी हिन्दीने फारसी पोशाक पहननी शुरू की और इस तरह हिन्दू हिन्दीसे अलग होने लगी। अमीर खुसरोने १४ वीं ईस्वी शताब्दीमे जो कुछ कविता की, वह फारसी अक्षरोमे ही लिखी सही, तथापि हिन्दी कविता करनेके समय उनकी दृष्टि हिन्दुस्थानकी ओर ही विशेष थी, इसलिये उसमे मुसलमान भावोकी अधिकता नही है। किन्तु उनके बाद जिन मुसलमान विद्वानोने हिन्दीको अपनी भाषा बनाया, वे ईरानियो और तुर्किस्तानियोकी सन्तति होनेके कारण बचपनसे ही शेमेटिक आबोहवामे पले थे, इसलिये स्वभावतः वहींके भाव उनकी कवितामे आ जाते थे।

उर्दूका आदि कवि कौन है, इस विषयमे कुछ मतभेद है, क्योकि कोई अमीर खुसरोसे उसका सम्बन्ध लगाते है और कोई कहता है कि अकबरके जमानेमे फैजीके दोस्त गुजरातके शुजाउद्दीन नूरीने उर्दूमे पहले पहल गजले कही। ये गोलकुण्डेके सुलतान अबुलहसन कुतुबशाहके वजीरके बेटेके उस्ताद थे।

इनके बाद गोलकुण्डेके कुली कुतुबशाह (शासन-काल १५८१ से ८६) और इनके उत्तराधिकारी अब्दुल्ला कुतुबशाह, जो १६११ ईस्वीमे तख्तनशीन हुए थे, बहुतसी गजले, रुबाइयाँ, मस्नवियाँ और कसीदे छोड़ गये है। परन्तु अहमदाबादके शम्सवली-उल्ला "वली" ही उर्दूके पहले शाइर माने जाते है और "बाबाए रेख्ता" कहलाते है। ये औरङ्गजेबके जमानेमे दिल्ली भी गये थे और वहाँ शेख सईदउल्ला गुलशनसे फारसी भावो और विचारो को हिन्दुस्तानी जामा पहनाना सीखा था। गुजरात और गोलकुण्डा दक्षिणमे है, इसलिये वहाँ मुसलमान जो भाषा उत्तरसे ले गये और जिसमे उन्होने शाइरी की, वह दखनी कहलायी। फिर तो हैदराबादमे इस दखनीको फलने-फूलनेका बहुत मौका मिला।

मुहम्मदशाहके जमानेमे (१७१९ मे) जब वलीका दीवान दिल्ली पहुँचा, तब सबसे पहले उन्हींके ढङ्गपर हातिमने दिल्लीकी हिन्दी या उर्दूमे गजले लिखी। इनके बाद तो नाजी, मजनूँ और आबरू अच्छे शाइर हुए। शाह आलम बादशाह ख़ुद बहुत अच्छे शाइर हुए है और उनके चार दीवान उर्दूमे मौजूद है। उनका तखल्लुस या कविताका उपनाम जिसे छाप कहते है, "आफताब" (सूर्य) था। इसलिये कहा जाता है कि आलमगीरके अहदमे नज्मका (पद्यका) जो चिराग वलीने रौशन किया, वह शाह आलमके ज़मानेमे आफताब होकर चमका। सौदा आबरूके ही शागिर्द थे। १७३९ मे नादिरशाहीके बाद दिल्लीकी कला

क्षीण होने लगी और १७५६ मे अहमदशाह दुर्रानीके हमलेके बाद तो दिल्लीके आर्जू, सौदा और मीर तकी जैसे बहुतसे शाइर लखनऊ चले आये, क्योंकि इसकी चढ़ती कला थी और नवाब आसफुद्दौला अच्छे कद्रदॉ थे। मीरसोज़, मीरहसन और क़लन्दर बख्श जुर्रत भी लखनऊ आ पहुँचे और इस तरह ज़बॉदानीका दिल्लीका दावा खारिज हो गया। जुर्रत और मिरज़ा मजहर जानेजानॉ हिन्दीकी कविता भी करते थे और दोहे कवित्त बनाते थे। परन्तु इनकी हिन्दी कविता प्रसिद्ध नही है। कही छपी भी देखनेमे नही आयी।

जैसा पाठक जानते है, वलीका "बाबाए रेख्ता" होनेका दावा नही माना जा सकता, क्योंकि असल "बाबाए रेख्ता" खुसरो है और इनके बाद कबीरका हक है और वलीका हक अगर है तो उनका नम्बर चौथा है। भाषाका सबसे पुराना नाम हिन्दी या हिन्दवी है। इसके बादका नाम रेख्ता है, पर शाह आलमके ज़मानेके पहले कोई उसे "उर्दू" नामसे नहीं पहचानता था, क्योंकि कहा जाता है, मशहूर शाइर मीरज़ा मुहम्मद रफी सौदा शागिर्द तो शाह हातमके थे, मगर खान आर्जूकी सङ्गतसे बहुत लाभ उठाया था। खान आर्जूने ही उन्हे फारसीके बदले उर्दूमे कविता करनेकी सलाह इस तरह दी थी :—"मिरज़ा अब फारसी तुम्हारी ज़बान मादरी नही, इसमे ऐसे नही हो सकते कि तुम्हारा कलाम अहले ज़बानके मुकाबिलमे काबिले तारीफ हो। तबै मौजूँ है। शेरसे निहायत मुनासिबत रखती है, तुम उर्दू कहा करो।"

दिल्ली उजड़नेपर हिन्दुस्तानमे तीन मुसलमानी सल्तनतें कायम हुईं, हैदराबाद, मुर्शिदाबाद और लखनऊ। यद्यपि दक्षिण-से ही उर्दूकी शाइरी शुरू हुई, तथापि दिल्लीमे सचमुच शाइरी कहलाने योग्य हुई और लखनऊने उसको और रौनक बख्शी। पहले तो दिल्लीके शाइर ही लखनऊ आये थे, जिनकी नवाब आसफुद्दौलाने अच्छी इज्ज़त की और ६००) सालाना तलब कर दी। बादको लखनऊमे भी अच्छे शाइर हुए और ऐसे हुए कि दिल्लीसे कई बातोमे वैसे ही स्वतंत्र हो गये, जैसे नवाब दिल्लीके बादशाहसे स्वतंत्र हुए थे। वर्त्तमान भाषाका रूप सुरूप करनेमे लखनऊवालोका बड़ा हाथ है।

पहले उर्दूमे भी ऐसे शब्द और प्रत्यय तथा कारकान्त चिन्होका प्रयोग होता था, जिन्हे आज हिन्दीवाले भी गँवारी या अशिष्ट समझते है, जैसे "से" की जगह "सो" :—

दिल वलीका ले लिया दिल्लीने छीन।
जा कहो कोई मुहम्मद शाहसो॥

उर्दू शाइरोने बुलबुल, जान, दीद (दर्शन) और सैरको पुलिंग भी लिखा है, यद्यपि ये स्त्रीलिङ्ग ही है। सुनिये—

एक लहज़ा और भी वह उड़ाता चमनका दीद।
फ़ुर्सत न दी ज़मानेने इतनी शरारको॥ (मीर दर्द)
सुनै है मुर्ग़ चमनका तु नाला ऐ सैयाद।
बहार आनेकी बुलबुल खबर लगा कहने॥ (सौदा)

सैरे चमनको चलिये बुलबुल पुकारते हैं। (आतिश लखनवी)
कहा तबीबने अहवाल देखकर मेरा।
कि सख्त जान है सौदाका आह क्या कीजै॥
बुताका दीद मैं करता हूँ शेख़ जिस दिनसे।
हवाल तबसे मय यूव यूँ मेरे दिलमे॥
करें शुमार बहम दिलके यार दागोंका।
तू आ कि सैर करें आज दिलके बागोंका॥

दिल्लीवाले पै और पर, तलक और तक, कभू और कभी दोनों लिखते थे। पर लखनऊ वालोंने पर, तक और कभी ले लिये और बाकी छोड़ दिये। रखा और रक्खा, बिठाना और बैठाना, पिन्हाना और पहनाना इनमे पिछले रूप स्वीकृत और पहले त्याज्य ठहरे। ईजाद और कलाम पुंलिंग है, पर कोई स्त्रीलिंग भी बोलते है। तर्ज़ स्त्रीलिंग है, पर पुलिग भी बोलते है। इस बाबमें—सम्बन्धमे अर्थमे बोलते थे। अब लखनऊवालोंने "इस बारेमे" बोलना शुरू किया। गदरके पहले दिल्लीवाले न बोलते थे, अब सब बोलते है। वर्तमानकालिक क्रियामे 'आय है, जाय है' प्रयोग चलते थे, अब सब लोग "आता है, जाता है" लिखते बोलते है।

मुसलमान शाइर और आलिम हिन्दुस्थानमे रहते अवश्य थे, पर यहाँके साहित्यका अध्ययन उनमे विरले ही किसीने किया था। उनकी जो पीढ़ी यहाँ पैदा हुई, वह भी ईरानी और अरबी संस्कृतिमे ही पली, जिसका फल यह हुआ कि जब उसने इस

देशकी भाषा हिन्दीको अपनाया तो इसमे अरबी, फारसी और तुर्की शब्दोकी बहुतायत ही नही कर दी, बल्कि अरबी, फारसी भावो और संस्कृतिसे इस प्रकार भर दिया कि नामको तो यह भाषा हिन्दी रह गयी, पर वास्तवमे मुसलमानी या फारसी हिन्दी होकर इसने उर्दू नाम पाया। उर्दू ने फारसीका अनुकरण बेतरह किया है। यहाँ तक कि इतिहास, कहानियाँ और कहावतें तक फ़ारसीकी ले ली और उदाहरण और दृष्टान्त भी वहीकी चीजो, आदमियो और जगहो, नदियो और पहाड़ोके दिये, जिन्हे कभी स्वप्नमे भी नही देखा था। देखिये यहाँ भीम और अर्जुनकी वीरता प्रसिद्ध है, पर सौदाने वीरता शूरताके लिये रुस्तम और सामको याद किया और कहा कि—

रुस्तम रहा जमींपे न साम रह गया।
मर्दोका आस्माँके तले नाम रह गया॥

रूपराशिका वर्णन करनेके समय भी उर्दू शाइरोंने द्रौपदी, दमयन्ती जैसी भारतीय ललनाओंके नाम नहीं लिये, बल्कि सुन्दरताकी तुलना करने बैठे, तो लैली और शीरींको ले आये। अब तो शीरीं-फरहाद और लैला-मजनूँके किस्से हिन्दुओंको भी अच्छी तरह मालूम हो गये, क्योंकि थियेटरों और बाइस्कोपों मे भी दिखाये जा रहे है, परन्तु उर्दूवालोंने कभी इसकी परवाह नहीं की कि हिन्दुस्थानके लोग उनकी शाइरी समझते है या नही। इतनेसे ही अन्त नही हुआ। मजनूँ और फरहाद जब रोये, तब उनकी आँखोसे गंगा और यमुना तो बह नही सकती थी। इसी

जीहो-सीहो* नामकी नदियाँ भी यहाँ लानी पड़ीं। फिर हिमालय, विन्ध्याचलके बदले कोहे वेसतूं, कस्र शीरीं और कोहे अलवन्द भी लाये गये। सारांश, कविता होती थी हिन्दुस्थानमें बैठकर, पर मन सैर करता था ईरानकी। कभी-कभी कोई शाइर यहाँकी उपमाएँ भी काममें लाते थे, जैसे इनशाने किया है। सुनिये—

मिले पारेसे जो हड़ताल करके राखका जोड़ा।
तो ताँबेसुरजी उगलें कोई नव्वे लाखका जोड़ा॥
नहीं कुछ भेदसे खाली यह तुलसीदासजी साहब!
लगाया है जो इक भौरेसे तुमने आँखका जोड़ा॥
लिपटकर किरशनजीसे राधका हँसकर लगीं कहने।
मिला है चाँदसे ये लो अँधेरे पाख का जोड़ा॥
यह सच समझो कि इनशा है जगत सेठ इस जमानेका।
नहीं शेरो सखुनमें कोई इसके साखका जोड़ा॥
ऐ इश्क अजी आओ महाराजोंके राजा डंडवत है तुमको।
कर बैठे हो तुम लाखों करोड़ोंही के सर चट इक आनमें चटपट॥
यह जो महन्त बैठे हैं राधाके कुंडपर।
अवतार बनके गिरते हैं परियोंके झुंडपर॥ इत्यादि

सौदाने भी मौजमें आकर कभी हिन्दुस्थानी विशेपताओंका ध्यान रखकर शेरें कही हैं, जिनसे कुछ नीचे उद्धृत की गयी हैं:—

---

* तूरानकी नदियाँ। मिजगाँ = पलकें।

तर्कश उलेडं सीना आलमका छान मारा।
मिजगाने तेरे प्यारे अर्जुनका बान मारा॥
मुहब्बतके करूँ भुजबलकी मैं तारीफ क्या यारो।
सितम पर्वत हो तो इसको उठा लेता है जूँ राई॥
नहीं है घर कोई ऐसा जहाँ इसको न देखा हो।
कन्हैयासे नहीं कुछ कम सनम मेरा वह हरजाई॥
सावनके वादलोंकी तरहसे भरे हुए।
यह वह नैन है जिनसे कि जङ्गल हरे हुए॥

परन्तु सच तो यह है कि उर्दू के अधिकांश कवियोंकी दृष्टि सदा पश्चिमकी ओर रही और बुलबुल, गुल, शराब, इश्क, बुत, काफिर, सूफी, बिरहमन, वाइज, ग़म नासह, रोजे महशर, शेख और जाहिद, खिज्र, शैतान, मसीहा, आदम और हौवाके सिवा शीरीं-फरहाद, लैला-मजनूँ और यूसुफ-जुलेखाकी चर्चासे उनकी कविता ओतप्रोत दिखाई देती है। इन सबका सम्बन्ध फारस, अरब आदि देशोंसे है और इसलिये जो इन्हे नहीं जानता वह उर्दू कविता नही समझ सकता, क्योंकि किस मतलबसे क्या कहा गया है, यह विचारा हिन्दुस्थानी आदमी क्या जाने, जब तक उसने इनके सम्बन्धका साहित्य न पढ़ा हो।

रातको प्रेमालापमे साकीका आना वाजिब समझा जाता है। साकी अरबी शब्द है और इसके लिये यहाँ कोई उपयुक्त शब्द नहीं है। शराबफरोशको यहाँ सूंड़ी, कलवार या कलार कहते है और दूकान सूंड़ी खाना या कलवरिया कह-

लाती है। पर साकी सूंड़ी या कलवार नहीं है। यह तो जलसे मे शराव पिलाने आता है। इसका काम है शरावके प्याले भरभरकर लोगोको देना। शराव पीनेकी रस्म यहाँ इस तरह नही थी, इसलिये साक़ी भी नहीं था। शरावकी प्रशंसा करते उर्दू शाइर कभी नहीं थकते।

मस्ती वो वेख़ुदीमे आसूदगी[१] वहुत थी।
पाया न चैन हमने तर्के शराव करके॥ (मीर)
लुत्फे मय तुझसे क्या कहूँ जाहिद?
हाय कमवख्त तूने पी ही नही॥ (दाग)
पिला मय आशकारा[२] हमको किसकी साकिया चोरी।
ख़ुदाकी जव नहीं चोरी तो फिर वन्देकी क्या चोरी॥ (ज़ौक़)
वहार आयी है भरदे वादए[३] गुलगूँसे पैमाना।
रहे लाखों वरस साक़ी तेरा आवाद मयख़ाना॥
मय भी है मीना[४] भी है सागर[५] भी है साकी नहीं।
जीमें आता है लगादें आग मयखानेको हम॥ (गोया)

सब शाइर शरावी ही नहीं थे, परन्तु प्रेमको शरावकी उपमा और प्रेमपात्र (माशूक) को साक़ीकी उपमा देनेके कारण वे साक़ी और शरावकी प्रशंसामे मस्त हो जाते थे। उर्दू शाइर फारसी और अरवी संस्कारोके कारण आस्मान या फलकको जली कटी सुनाया करते है, क्योकि ये भी समझते है कि आस्मान हमेशा घूमा करता है, इसलिये दूसरोको भी सुखसे वैठे नहीं देख सकता।

१ तुष्टि, २ खुल्लमखुल्ला, ३ शराव, ४ शरावका शीशा, ५ प्याला।

मुसलमानी मतानुसार एक दिन वे सब आदमी ख़ुदाके हुज़ूरमें हाज़िर किये जायँगे, जो मर चुके हैं और उनके अच्छे-बुरे कामोंके लिये परमेश्वर उन्हें स्वर्ग (जन्नत या विहिश्त) अथवा नरक या दोज़खमें भेजेगा। विहिश्तमें शराबकी नदियाँ और परियाँ मिलेंगी और दोज़खमें जलती हुई आगका सामना करना पडेगा। मुसलमानोंका विश्वास है कि जो तोबा (पश्चात्ताप) करेगा, उसके अपराध क्षमा कर दिये जायँगे तथा ईश्वर बड़ा दयालु है, वह यों भी सबको क्षमा कर देगा।* यही रोजे महशर, या इन्तकाम या कयामतका दिन कहलाता है। ईसाई भी विश्वास करते हैं कि न्यायका एक दिन आवेगा। इस रोजे महशरपर भी बहुतसी कविताएँ हैं।

करीब है यार रोजे महशर छिपेगा कुश्तोंका[1] खून क्योंकर ?
जो चुप रहेगी ज़बाने खंजर लहू पुकारेगा आस्तीं का॥ (दाग)
है यह ज़ुल्म चन्द रोज़ा है एक दिन इन्तकामका भी।
अमीर हम्माम गर्म कर लें गरीबका झोंपडा जलाकर॥ (अमीर)

---

* यह फारसी पद्य इसी भावका द्योतक है —

शुनीदम् कि दर राजे उम्मेदो बीम।
वदाँरा बनेका बेवख्शद करीम॥

अर्थात्—मैंने आशा और भयके बीच यह सुना कि कृपालु परमेश्वर बुरोंको भी अच्छों के साथ क्षमा कर देगा।

1 मारे हुओंका।

उर्दू कवियोंको आशा है कि रोजे महशरको जिसे रोजे हश्र भी कहते हैं, उनका और उनके माशूकका इन्साफ होगा और इसीपर वे अपने मनको समझाया करते हैं। कभी-कभी कई उर्दू शाइरोंने यह सन्देह भी प्रकट किया है कि शायद इन्साफ न हो।

शराबकी तरह इश्क (प्रेम), आशिक (प्रेमी) और माशूक (प्रेमपात्र) पुरानी उर्दू कविताकी जान है। इन्हें निकाल डाले, तो फिर कुछ नहीं रह जाता। बुतका अर्थ मूर्त्ति या प्रतिमा है। पर उर्दू कवितामें यह और इसका अरबी प्रतिशब्द "सनम" माशूकके लिये आते हैं। माशूकका वासस्थान बुतखाना या दैर कहाता है और आशिक सनमपरस्त या बुतपरस्त (प्रतिमा-पूजक या प्रेमपात्रका पुजारी) है। यों तो क़ुरानके अनुसार काफिर वह है जो ईश्वरके अतिरिक्त किसी दूसरेकी प्रार्थना इस आशासे करता है कि यह उसे वह वस्तु देगा, जो केवल ईश्वर ही दे सकता है। परन्तु कवियोंने माशूकके लिये काफिर शब्दका प्रयोग किया है। एक शाइरका कलाम है:—

मुहब्बतमें नहीं है फर्क जीने और मरनेका।
उसीको देखकर जीते हैं जिस काफिर पै दम निकले॥

फारसीके एक सूफी कविने अपनेको इश्कका काफिर कहा है; जैसे—

काफिरे इश्कम् मुसलमानी मरा दरकार नेस्त।
हर रगे मंन तार गश्ता हाजते .जुन्नार नेस्त॥

कहता है कि मै इश्क या प्रेमका काफिर—दीवाना हूँ। मुझे मुसलमान होनेकी ज़रूरत नहीं है और जो कहो कि तुम जनेऊ भी तो नहीं पहने हो, तो मेरी रग-रगमे तार गया हुआ है, इसलिये मुझे जनेऊ भी दरकार नहीं है।

वाइज या नासह वाज़ (उपदेश) देनेवालेको कहते है। परन्तु उर्दू शाइरोने धर्मके ठेकेदारो या ढोगियोके लिये इसका प्रयोग किया है, जो आप तो धर्मका ढोग रचते है और जो आडम्बर-शून्य सच्चे भगवद्भक्त होते है तथा रूढ़ियोका पालन नहीं करते, उनको पथभ्रष्ट कहकर उनकी निन्दा करते है। इसीलिये उर्दू शाइरोने वाइजोकी हँसी उड़ायी है। गालिब कहते है :—

कहाँ मयखानेका दरवाजा गालिब और कहाँ वाइज।
पर इतना जानते है कि कल वह जाता था कि हम निकले ॥

इस्लाममे शराब पीना हराम है और वाइज सबको यही उपदेश दिया करते है। परन्तु यह "परोपदेशे पाण्डित्यम्" है, यही गालिबने इस शेरमे बड़ी ख़ूबीसे बताया है। कविका कहना है कि शराबखानेके दरवाजे और वाइजमे बड़ा अन्तर है, क्योकि शराब न पीनेका उपदेश देना उसका काम है, इसलिये शराब-खानेके दरवाजेतक वह पहुँच ही नहीं सकता। फिर भी यह हम जानते है कि जब वह अन्दर जा रहा था, तब हम निकल रहे थे। कैसी मीठी चुटकी है!

शेख और जाहिद भी ऐसे ही शब्द है। शेख तो बुजुर्गको कहते हैं और जाहिद परहेजगार, मद्यपान आदि व्यसनोसे दूर

रहनेवाला है। पर उर्दू शाइरोंने इन शब्दोंका प्रयोग भी पाखंडियों और बगुलाभगतोंके लिये किया है और जगह-जगह इनकी धूल उड़ायी है।

जाहिद[1] न तुम पियो न किसीको पिला सको।
क्या बात है तुम्हारी शराबे तहूर[2] की। (गालिब)
किसीकी तो जाहिदको होती मुहब्बत।
बुतोंकी न होती ख़ुदाकी तो होती॥
हुआ है चार सिजदोंपर ये दावा जाहिदो तुमको।
ख़ुदाने क्या तुम्हारे हाथ जन्नत[3] बेच डाली है?
तर्के है ज़ाहिद शराबे गुलगूँ[4] हुआ है दिल भी ख़राब आधा।
खिला दे साक़ी बलासे इसको डुबोके तू भी कबाब आधा॥ (सैयद)
जाहिद शराब पीने दे मसजिदमें बैठकर।
या वह जगह बता कि जहाँपर ख़ुदा न हो॥
ये शेखजी जो मुसल्ला[5] बिछाये बैठे है।
बुतोंकी यादमें आसन जमाये बैठे हैं॥
किसीपर मर मिटे होंगे मये[6] गुलगूँ भी होगी॥
जवानीमें जनाबे शेख़ने क्या कुछ न की होगी॥

सिजदा कहते है नमाजमे सिर झुकानेको। शायद नमाज न पढनेवाले किसीको ज़ाहिदोंने छेड़ा है। इसपर वह कहता

१—पाठान्तर—वाइज़। २—स्वर्ग। ३—बिहिश्त, स्वर्ग। ४—लाल रङ्ग। ५—जायनमाज = जिस कपड़ेपर बैठकर नमाज पढते है। ६—शराब।

है कि तुम चार सिजदोंपर बड़े धार्मिक होनेकी डींग मार रहे हो। क्या ख़ुदाने तुम्हारे हाथ स्वर्ग बेच डाला है कि जिसको चाहोगे जाने दोगे और बाक़ीको रोक दोगे? चूँकि ज़ाहिद कर्मकाण्डवादी होता है, इसलिये उसमें कर्मठपन भले ही हो, प्रेम नहीं होता— ईश्वरका भी प्रेम नहीं होता। यही इसका भाव है। शेखजीके ढोंगके बारेमें कवि कहता है कि जवानीमें इन्होंने सब किया होगा—शराब भी पी होगी और किसीपर आशिक भी हुए होंगे। पर इस समय "सत्तर मूसे तोड़ बिलाई चली हजको।"

खिज़्र, मुसलमानोंके एक फरिश्ते या देवदूतका नाम है। हिन्दुओंमें अश्वत्थामा[1], बलि, व्यास, हनुमान्, विभीषण, कृपाचार्य, परशुराम और मार्कण्डेय चिरजीव हैं, वैसे ही मुसलमानोंमें खिज़्र भी चिरंजीव है। मुसलमानोंका विश्वास है कि ये भूले-भटकोंको राह बताया करते हैं। महाकवि दागका शेर है:—

हम एक रास्ता गलीका उसकी दिखाके दिलको हुए पशेमा।
ये हज़्रते खिज़्रको जता दो किसीकी तुम रहबरी[2] न करना॥

१—अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमाश्च विभीषण।
कृप परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविन॥
सप्तैतान्स्मरन्नित्यं मार्कण्डेय यथाष्टमम्।
जीवेद्वर्षशतं साग्रमपमृत्यु विनश्यति।'
(आनन्द रामायण।)

२—रास्ता बताना।

खि.ज्रके नामपर ही कलकत्तेका एक मुहल्ला बसा है, जिसे लोग खिदिरपुर कहते है। वास्तवमे वह खि.ज्रपूर है।

शैतान भी एक फरिश्ते या देव-दूतका नाम है। कुरानके अनुसार जब .खुदाने आदमको पैदा किया तब सब फरिश्तोको हुक्म दिया कि इसको सिजदा—नमस्कार करो। शैतानको छोड़ सबने नमस्कार किया। शैतानने नमस्कार न करनेका यह कारण बताया कि "तूने मुझे तो आगसे पैदा किया है और आदमको मिट्टीसे, इसलिये मैं इसे क्यो सिजदा करूँ ?" .खुदाको शैतानका यह घमण्ड बुरा मालूम हुआ, इससे उसने इसे बहिश्तसे निकाल दिया। शैतानने अपनी पूजाका पुरस्कार माँगा कि मुझे क़यामतके दिनतककी ज़िन्दगी मिल जाय। जब .खुदाने यह बात मान ली, तब इसने कहा कि मैं तेरे बन्दोको बहकाया करूँगा। .खुदाने कहा कि जो मेरे भक्त होगे, वे तेरे बहकावेमे न आवेगे।

आदम और हौवा उन पुरुष और स्त्रीके नाम है, जिन्हे मुसलमानी मतानुसार खु.दाने बिना बाप माके पैदा किया था। दुनियामे आनेके पहले वे बिहिश्तमे रहा करते थे। .खुदाने इन्हे गेहूँके पेड़का फल खानेसे मना किया था, पर शैतानके बहकावेमे आकर हौवाने आप वह निषिद्ध फल खाया और अपने पतिको भी खिलाया। इसलिये खु.दाने बिहिश्तसे इन्हे निकाल दिया। महाकवि ग़ालिबने इस शेरमे इसी बातकी ओर इशारा किया है :—

निकलना ख़ुल्दसे[1] आदमका सुनते आये थे लेकिन।
बहुत बेआबरू होकर तेरे कूचेसे हम निकले ॥

ईसामसीह ईसाई मतके तो प्रवर्त्तक है ही, परन्तु मुसलमान भी उन्हें अपना एक पैगम्बर मानते है। ईसाके सम्बन्धमे कहा जाता है कि वे रोगियोको अच्छा कर देते थे और मुर्दोतकको जिला देते थे। माशूककी कृपा-दृष्टिसे आशिकका रोग दूर हो जाता है। यही कारण है कि उर्दू कवि माशूकको ईसा या मसीह या मसीहा कहते है, जैसेः—

वादा है मेरे मसीहामे यहाँ आनेका।
एक दम और न आये जो अजल[2] आयी हो ॥

शीरीं-फरहाद, लैला-मजनूँ और जुलेखा-यूसुफ प्रसिद्ध माशूक और आशिक है। शीरीं ईरानकी बड़ी रूपवती स्त्री थी और चीनका चित्रकार फरहाद इसपर मोहित था। ईरानका शाह ख़ुसरो भी इसपर आसक्त था और किसी प्रकार अपने महलमे इसे ले गया था। परन्तु शीरींका फरहादसे प्रेम था, इसलिये इसके विरहमे वह रोया करती थी। खुसरोने यह देख शीरींसे कहकर फरहादके प्रेमकी परीक्षा करनी चाही और वह इस प्रकार कि फरहाद पहाड़ खोदकर महलतक नहर ले आवे और यदि वह ऐसा कर देगा तो पुरस्कारमे शीरींको प्राप्त कर लेगा। फरहादने जब नहर निकाल दी, तब शाहने फरहादसे कहा कि शीरीं

१—स्वर्ग। २—मौतकी मुकर्रर घड़ी।

मर गयी। इसपर फरहादने आत्महत्या कर ली और जब शीरींको यह मालूम हुआ तो इसने भी आत्मघात कर लिया।

मजनूँ, जिसका असली नाम कैस था, अरबके नज्द देशका रहनेवाला था। वह अरब-रमणी लैलाके प्रेममे इतना उन्मत्त रहता था कि तन-बदनकी खबर न रखता था। उर्दू कवियोने अपनेको मजनूँ और फरहाद और कभी-कभी इनसे भी बढ़कर सिद्ध करनेकी चेष्टा की है। एक शाइर अपने माशूकसे कहता है:—

> कैसो फरहादके किस्से तो सुना करते हो लेकिन।
> दाद दो इसकी कि हमने तुम्हे कैसा चाहा॥

यूसुफ मुसलमानोके एक पैगम्बर थे और किनान देशमे रहते थे। कहते है कि संसारके सौन्दर्यका तीन चौथाई भाग उनमे था। परन्तु भाइयोने डाह कर उन्हे मिस्रके किसी सौदागरके हाथ बेच दिया और उस सौदागरने वहाँके राजाके हाथ बेच दिया। राजाकी स्त्री जुलेखा उनपर आसक्त हो गयी और इसने उन्हे अपने वशमे लानेमे कोई बात उठा नहीं रखी। जब वे इसके फेरमे नहीं आये, तब इसने उन्हे बन्दीगृहमे डलवाकर अनेक कष्ट दिये। अन्तमे जब राजाको यह भेद मालूम हुआ तो उसने उन्हे अपना युवराज बना लिया। कुछ दिनोमे वे मिस्रके राजा हो गये। पुत्र-वियोगमे उनके पिता याकूबकी आँखोकी ज्योति जाती रही थी, पर इनका समाचार सुनकर फिर ज्योति आ गयी। उर्दू कवियोने अपनी

कवितामे मिस्रके जेलखाने, हज़रते याकूबकी आँखोकी रोशनी तथा यूसुफकी सुन्दरताका अच्छा वर्णन किया है।—

तुम वो यूसुफ हो कि अच्छा भी तमाशाई[1] हो।
दीदए हज़रते याकूबकी बीनाई[2] हो॥

१—दर्शक, तमाशा देखनेवाला। २—नेत्र-ज्योति।

सूफ़ी मत और इश्क़

सूफी, इश्क, आशिक और माशूक ऐसे शब्द है जिनका उर्दू फारसीकी कवितामे वहुत अधिक प्रयोग हुआ और होता है। इसलिये इनके सम्वन्धमे कुछ विस्तारसे लिखनेका प्रयोजन है। सूफी शब्द यूनानी (यवन या ग्रीक) भाषाके सूफिया शब्दसे निकला है या अरबीके सूफ शब्दसे यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। परन्तु सूफियासे बनना वहुत सम्भव है, क्योकि इसका अर्थ बुद्धिमत्ता है और सूफी ईश्वर-प्रेमी होनेके कारण बुद्धिमान समझे भी जाते है। अरवी सूफका अर्थ ऊन या पश्मीना है और ईरानी साधु बहुधा ऊनी कपड़ा पहनते है, इसलिये ईश्वर-प्रेमी साधु सूफी कहलाने लगे हो तो आश्चर्य नहीं।

सूफियोका मत तसव्वुफ कहलाता है और यह एक प्रकारका वेदान्त है। सूफियोका कहना है कि सव आत्माएँ ईश्वरसे निकली है और अन्तमे उसीकी ओर लौट जायंगी। जो कुछ उसने बनाया है, सबमे उसीकी आत्मा है। ईश्वर-प्रेमके सिवा सब व्यर्थ है। सांसारिक जीवन माशूक वा ईश्वरसे वियोग है। कट्टर मुसलमान सूफियोको रिन्द या मजहबी बातोका न माननेवाला कहते है। परन्तु फारसी और उर्दूके बहुतसे शाइरोने सूफियोका अनुकरण करनेमे ही गौरव समझा है और 'निर्भीक' अर्थमे रिन्द शब्दका

अपने लिये प्रयोग भी किया है। सारांश, सूफी मत एकात्मवाद वा सर्वात्मवाद है।

सूफी अपनेको आशिक और ईश्वरको माशूक या प्रेमपात्र मानते है। इश्क वा प्रेम दो तरहका होता है, एक इश्के हकीकी और दूसरा इश्के मजाजी। इश्के मजाजीका अर्थ सासारिक वस्तुओ या मनुष्यसे प्रेम है। हक ईश्वरको कहते है, इसलिये इश्के हकीकी ईश्वर-प्रेम है। खुदा माशूके हकीकी और इन्सान माशूके मजाजी है। इश्के हकीकीका दूसरा नाम इश्के कामिल है। बहुतसे उर्दू शाइरोकी समझ है कि इश्के मजाजी इश्के हकीकीकी सीढ़ी है और इसीलिये उर्दू शाइरी आशिक-माशूककी बातोसे शराबोर है।

सूफी मत इस्लामका अंग रहनेपर भी कट्टर मुसलमान इसे कुफ्र और सूफीको रिन्द और काफिर तक कह डालते है। इसका कारण यह है कि तसव्वुफका मूलाधार वेदान्तका अद्वैतवाद है और योग तथा भक्तिकी पुट देकर वह मुसलमानी सॉचेमे ढाल लिया गया है। अरब और ईरान आदि मुसलमानी देशोसे भारतका सम्बन्ध था और चूँकि वेदान्तके ब्रह्मवादसे इस्लामके तौहीद वा एकेश्वरवादका सामञ्जस्य हो जाता था, इसलिये वहॉ एक ऐसा सम्प्रदाय उत्पन्न हो गया, जो ऊपरसे मुसलमान रहनेपर भी भीतरसे प्रेममार्गी वेदान्ती बन गया। किसी समय तो तसव्वुफके एकात्मवाद वा सर्वात्मवादने ईराक-अरबके सब वादोंको दबा दिया था। अरबके बडे-बड़े विद्वान्

सूफी बनने लगे थे। बसरेके उमर-बिन उस्मान मकीने तसव्वुफ पर कई बड़े अद्भुत ग्रन्थ लिखे थे, परन्तु किसी अनधिकारीको कभी नहीं दिखाते थे।

यह प्रसिद्ध है कि श्रीरामानुजाचार्यके गुरुने 'ओ नमो भगवते वासुदेवाय' मंत्र देकर उनसे कहा था कि यह किसीको न बताना। परन्तु श्रीरामानुजने गुरूजी की आज्ञा न मान ऊँचेपर चढ़ लोगोंको जोर-जोरसे सुनाना शुरू किया। इसका कारण यह था कि आचार्यने समझा कि गुरूकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेका जो दोष होगा, वह मुझे होगा, परन्तु लोगोका कल्याणी वाणी श्रवण करनेसे जो लाभ होगा, उससे अपने हितार्थ उन्हें वंचित करना उचित नहीं है। यही कारण था कि मकीके ग्रन्थ जब दिव्य प्रेमी मन्सूरके* हाथ लगे, तब ये लोगोंको सरे बाजार सुनाने लगे। इससे कट्टर मौलवी तो मन्सूरके दुश्मन हो ही गये, पर उमरबिन उस्मानसे भी असन्तुष्ट हो गये, जिसके फल-स्वरूप दोनोंमे

---

* मन्सूरका नाम हुसेन था और इनके पिताका नाम मन्सूर। अरबीमे पूरा नाम हुआ हुसैन इब्न मन्सूर जिसका अर्थ हुआ हुसैन वल्द मन्सूर। दक्षिणियोकी तरह अरब लोगोंमे लड़केके नामके साथ बापका नाम रहता है। हुसैनने अपना नाम तो छोड़ दिया और पिताका नाम अपना लिया और सच्चे पुत्रकी तरह पिताको पुत् नामक नरकसे ही नहीं निकाला—लोप होनेसे ही नहीं बचाया—बल्कि उन्हें संसारमे अच्छी तरह चमका दिया।

मनमुटाव हो गया। इसलिये मन्सूर बगदाद चले गये और जब वहाँके विद्वान् शुस्तरसे भी मतान्तर हो गया, तब वहाँसे शुस्तर को रवाना हो गये। शुस्तरमे भक्त वा साधुकी तरह न रहकर विद्वान्की तरह दिन बिताने लगे। फिर मक्के जाकर एक वर्ष तक घोर तपस्या की, अनन्तर जब लौट कर बगदाद पहुँचे तो लोग इनसे घृणा करने लगे। यहाँ तक कि ये पचास शहरोंमें गये, पर किसीने कहीं इन्हे ठहरने तक न दिया! कट्टर मुसलमानोंने इनके नाकों दम कर दिया। और तो क्या, ईरानमे इनके खिलाफ कुफ्रका फतवा दिया गया और ये सूलीपर चढ़ा दिये गये। मन्सूरकी सूलीके बारेमे यह शेर बहुत प्रसिद्ध है :—

चढा मन्सूर सूलीपर, पुकारा इश्कबाजोंको।
ये उसके बाम[1] का जीना है, आये जिसका जी चाहे॥

कहते है कि जब मन्सूरको कत्लगाह—वधस्थानमे ले गये, तब उन्होंने भीड़पर दृष्टि डाली और जोरसे "हक हक अन् अल् हक" (ब्रह्म ब्रह्म अहं ब्रह्मास्मि) का नारा लगाया। एक फकीरने आगे बढ़कर पूछा कि इश्क क्या है तो बोले कि आज, कल और परसोंमे देख लोगे यानी आज आशिकको सूली दी जायगी, कल वह जलाया जायगा और परसों उसकी खाक उड़ायी जायगी।

इसी तरह औरंगजेबके जमानेमे एक आशिक सूफी सरमदको शहीद होना पड़ा था। सरमद अरमनी यहूदी था और बादको

१—अटारी।

मुसलमान बन गया था। वह व्यापार करने हिन्दुस्तान आया था और शाहजहाँके जमानेमे दिल्ली पहुँचा था। शाहजहाँके युवराज या वलीअहद और औरंगजेबके बड़े भाई दाराशिकोहने उपनिषदों का तर्जुमा फ़ारसीमें कराया था और सूफियोंका बड़ा भक्त था। सरमद भी सूफी था और इसलिये दाराके यहाँ आया-जाया करता था। यही नहीं, इसने दाराको राज पानेके लिये आशीर्वाद भी दिया था। सरमद प्रभावशाली सूफी था और उसका दारासे सद्भाव प्राणघातक सिद्ध हुआ।

औरंगजेबने मुल्लाओंसे षड़यंत्र कराके सरमदके कत्लका फतवा ले लिया। जब सरमदको इसका पता चला, तब उसने कहा कि :—

देर अस्त कि अफ़सानए मन्सूर कुहन शुद।
अकनूँ सरेनौ जलवा दिहम दारो रसनरा॥

अर्थात्—बहुत दिन हुए मन्सूरका किस्सा पुराना पड़ गया था। मै अभी नये सिरेसे सूलीपर चढ़कर उसे फिर ताजा करता हूँ। सूलीवाले दिन सरमदने कहा था :—

बजुर्मे-इश्क तो अम् मीकुशन्द गोगाएस्त।
तो नीज बरसरे बाम आ कि .खुश तमाशाएस्त॥

अर्थात्—तेरे प्रेमके अपराधमें मै मारा जा रहा हूँ यह उसीका कोलाहल है। तू भी अटारीपर चढ़कर देख तो क्या अच्छा तमाशा है।

सूफी अपने सिद्धान्तोंको सर्वसाधारणसे छिपाते थे, क्योंकि "न देयम् यस्यकस्यचित्"—जिस किसीको बतानेकी यह बात न

थी। भक्तिश्रद्धान्वित अधिकारीको ही रहस्य बताये जाते है। ऊसरमे बीज बोनेके वे पक्षपाती न थे, इसके सिवा दूसरा कारण कट्टर मुसलमानोका विरोध भी था, जो इसे कुफ़ समझते थे। इसलिये इनके अत्याचारोसे बचे रहनेकी चिन्ता भी लगी रहती थी। फलतः सूफी मतका प्रचार गुप्त रूपसे ईसाई मतके आरम्भिक कालकी भागती प्रार्थनाओकी तरह* होना अनिवार्य था। मन्सूर और सरमदकी तरह और भी कितने ही इश्कबाजोको जानके लाले पड़ गये होगे, क्योकि तसव्वुफको इस्लाम सुदृष्टिसे नही देखता था।

उर्दू-हिन्दीमे तसव्वुफ फारसीसे ही आया है, इसलिये यह भी जान लेना चाहिये कि वहाँ इसके ग्रन्थ कैसे है। फारसी भाषामे तसव्वुफके ग्रन्थोमे मौलाना रूमकी मस्नवी † बहुत प्रसिद्ध और प्रामाणिक है। तेरहवी ईस्वी शताब्दीमे मौलाना रूम हुए है। इनका पूरा नाम जलालुद्दीन रूमी है। फारसीमे अध्यात्म विद्या और आचारशास्त्रकी सबसे पुरानी पुस्तक हकीम सनाईकी 'हदीका' है। इसमे शरीर और मनके संसर्गसे उत्पन्न आत्माके रहस्य खोले गये है तथा धृति, शौच, दया, भक्ति आदि धर्मलक्षणोका

---

* आरम्भमें मतोंकी असहिष्णुताके कारण ईसाइयोंको यहूदी विरोधियोंसे बड़े कष्ट मिले। अपने ढग पर वे प्रार्थना नही करने पाते थे, इसलिये भागते हुए प्रार्थना करते थे। ईसाई मतके इतिहासमें ये भागती प्रार्थनाएँ प्रसिद्ध हैं।

† कल्पित प्रेम कथा काव्यको फारसीमें मस्नवी कहते हैं।

विशद वर्णन किया गया है। दूसरी पुस्तक ख्वाजा फरीदुद्दीन अत्तारकी "मस्नवी अत्तार" है। इन दोनो आध्यात्मिक विद्वानो के विषयमे मौलाना रूम ख़ुद फर्माते है कि "अत्तार रूह बूद सनाई दोचश्मे मा" अर्थात् अत्तार मेरी आत्मा है और सनाई दोनो ऑखे है। मौलाना रूमकी मस्नवी फारस, बुखारा, अफ़गानिस्तान और भारत आदि देशोमे ऐसे ढंग से गायी जाती है कि सुननेवाले प्रेमके मारे विह्वल और मूर्च्छित हो जाते है। मौलाना रूम आत्मवाद, अद्वैतवाद और पुनर्जन्मके मानने वाले थे। उनका यह पद्य उनके ईश्वर-प्रेमका साक्षी है।

शादबाश ऐ इश्क ख़ुश सौदाए मा।
ऐ तबीबे जुमला इल्लत-हाय मा॥
ऐ दवाए नखवतो नामूसे मा।
ऐ तो अफलातूनो जालीनूसो मा॥

ऐ इश्क मेरा अच्छा पागलपन, ऐ मेरी सब बीमारियोके वैद्य, ऐ मेरे अभिमान और सिद्धिकी दवा और ऐ मेरे अफलातून और जालीनूस ख़ुश रहो।

इस ग्रन्थके विषय मे श्रीयुक्त महेशप्रसाद (साधु) मौलवी फाजिलने "मौलाना रूम और उनका काव्य" की भूमिका मे लिखा है कि "मौलाना रूम १३ वी शताब्दी ईस्वीमे हुए है। उस समय तथा उससे पूर्वकालमे अफगानिस्तान, बलख, ईरान तथा अरब का बहुत कुछ सम्बन्ध भारतसे था। ××× अलबेरूनी, मसऊदी वा अन्य कई विद्वानोद्वारा भारतीय विद्या तथा ज्ञानकी

चर्चा बहुत कुछ उन देशोमे फैल गयी। निदान निर्विवाद रूपसे इस बातको मानना पड़ता है कि मौलाना रूमकी बहुतसी सारगर्भित बाते वास्तवमे भारतीय विद्या तथा ज्ञानके आधारपर है।" *

परन्तु इसी भारतीय विद्याको तसव्वुफका जामा पहनाकर मुसलमान सूफियोने हमारे सामने रखा। जिस सूफी सम्प्रदायमे अपनी जानकी बाजी लगानेवाले मन्सूर और सरमद जैसे इश्कबाज हुए, उसीमे आगे चलकर ऐसे अनाचारी निकले कि अमीर खुसरो सूफीके शागिर्द होनेपर भी सूफियोसे असन्तुष्ट रहते थे। फिर भी सूफी सम्प्रदायमे खुसरोकी कविता बडे आदरकी दृष्टिसे देखी जाती है, जिसे सुनकर सूफी साधु आपेमे नही रहते,

---

* पञ्चतन्त्रका भाषान्तर ईरानके शाह ख़ुसरो नौशेरवॉने हकीम बरजोरसे पहलवी भाषामें कराया था। उसका शासन-काल सन् ५३१ से ५७८ ईस्वी था। इससे स्पष्ट है कि मौलाना रूमने अपनी मस्नवीमें शेर और खरगोशकी जो कहानी लिखी वह पञ्चतंत्रकी—

बुद्धिर्यस्य बल तस्य, निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्।
पश्य सिंहो मदोन्मत्त शशकेन निपातित ॥

कहानीके आधारपरही है। अवश्यही इसका उपयोग मौलानाने अपने ढगपर कर लिया है। उपनिषदोंका उल्था भी नौशेरवॉके समयमें हो चुका था, इसलिये मौलानाको मस्नवी लिखनेके समय भारतीय आत्मविद्याका पता अवश्य था, यह निश्चय है।

सिर धुनते-धुनते बावले हो जाते हैं और कभी कभी मर भी जाते हैं। कुछ सूफियोंने ही खुले हुए इश्के मजाजीको छिपा हुआ इश्के हकीकी जाहिर किया है और बड़े बड़े रिन्द, शराबी, और अनाचारी फकीरों और शाइरोंको पहुँचा हुआ सूफ़ी कहकर इन्हीं लोगोंने पुजवाया है।

उमर खय्यामके बारेमे लिखते हुए मौलाना शिवलीने सूफियों-की भी खबर ली है। उन्होंने लिखा है:—

"साफ साबित है कि वह दरहकीकत शराब पीता था और यही जाहिरा शराब पीता था। अफसोस है कि वह फिलसफी और हकीम (दार्शनिक) था, सूफी न था, वर्ना हाफिजकी तरह यही शराब—शराबे मार्फत बन जाती।"

फारसीके सुप्रसिद्ध कवि शेख सादी शीराजी कहते हैं :—

मोहतसिब दर कफाए रिन्दानस्त,
गाफिल अज सूफियाने शाहिद बाज।

अर्थात् कोतवाल बेचारे रिन्दोंके पीछे पड़ा है और इन बदकार सूफियोंके हथकंडोसे बेखबर है, इन्हे नहीं पकड़ता।

गूढ़ विषयोंको कथाकहानी द्वारा वर्णन करनेकी परिपाटी बहुत प्राचीन है। कहीं तो ऐसा अलंकार और रूपक बाँधकर व्याख्या की जाती है कि साधारण पाठक अलंकार न समझ शब्दोंसे निकलने वाले अर्थकोही सत्य मान लेते और कहानीको कहानी नहीं समझते और कहीं सूत्ररूपसे कही हुई बातको विस्तार करके ग्रन्थ लिखे जाते है। जैसे वेदमे वृत्र-इन्द्र संग्राम और अहल्याकी कथा

आलंकारिक है। वृत्र मेघको कहते हैं और इन्द्र-सूर्य मेघको फाड़कर निकलते है। यही वृत्र और इन्द्रका युद्ध है। पुराणोंमे इन बातोका विस्तार कर अलंकार और भी बढ़ाया गया है। वहाॅ वृत्रको असुर बताकर इन्द्रसे उसका घोर युद्ध कराया गया है। इसी प्रकार अहल्या—रात, रात न कहकर गौतम-पत्नी बतायी गयी है और उसपर इन्द्रका आक्रमण वर्णित हुआ है। बौद्धोकी जातक कथाओंका उद्देश्य भी धर्मके गहन विषयोको सरल करके समझाना है। कथाऍ बहुधा काल्पनिक होती थी, परन्तु उनका प्रयोग धर्मकी व्याख्या करनेके लिये किया जाता था। यही बात सूफी मस्नवियोकी भी है। मस्नवीकी कहानी कल्पित होती है और उसकी कवितामे काफियेबन्दी (अनुप्रास) होती है—तुकहीन कविता नहीं होती। मौलाना रूमने जानवरो की और कहीं-कही आदमियोकी कहानियो द्वारा प्रेम या इश्कका उपदेश दिया है, क्योकि उन्होने लिखा है :—

खुशतराॅ बाशद कि सिर्रे दिलवराॅ।
गुफ्त आयद दरहदीसे दीगराँ॥

अर्थात् यह अच्छा है कि प्रेमपात्रो के रहस्य दूसरो के वार्त्तालाप के द्वारा प्रकट हो।

हिन्दीके सूफी कवियोने भी इसी पद्धतिका अनुसरण किया है। नायक और नायिकाके रूपलावण्य और प्रेमका वर्णन करते-करते ये कवि इश्के मजाजीको इश्के हकीकीकी ओर ले जाते है और वहाॅ अलङ्कारका रहस्य खोलते है। खुसरोकी मुकरियोकी

तरह अन्तमे कवि कहता है कि यह प्रेमगाथा वैसी नहीं है, जैसी पाठक अब तक समझता आता है, बल्कि यह कुछ और ही है। किसी दूसरी तरफ इशारा है। कुतवन शेखने मृगावती, मंझनने मधुमालती और मलिकमुहम्मद जायसीने (पद्मावत) काव्य मस्नवियोंकी तरह लिखा है। मुग्धावती, प्रेमावती और स्वप्नावतीके सिवा उस्मान कविकी चित्रावली, कासिमशाहकी हस जवाहिर और नूरमुहम्मदकी इन्द्रावत या इन्द्रावती इसी तरहको प्रेम-कथाएँ है। परन्तु जायसीकी पद्मावतीके सामने ये सभो काव्य फीके है।

जायस ग्राम जिला रायबरेलीमे रहनेके कारण मलिकमुहम्मद, जायसी कहलाते थे। जायस बैसवाड़ेमे है, इसलिये पद्मावतकी भाषा भी बैसवाड़ेकी भाषा अर्थात् वहाँ की भाषा है जहाँ पश्चिमी हिन्दीका पूर्वकी हिन्दी से प्रथम समागम होता है। इसके नायक चित्तौरके राजा रतनसेन और नायिका सिहलकी राजकुमारी पद्मावतो है। इसमे बताया गया है कि प्रेमका पन्थ बड़ा कंटकाकीर्ण है और जो बाधा-विघ्नको पार कर जाता है, उसीको प्रेयसी-सिद्धि अथवा ब्रह्मज्योतिकी प्राप्ति होती है। चूँकि जायसी मुसलमान थे और इस्लामपर इनकी भक्ति भी थी, इससे रसूल और चार यारोकी तारीफ शुरूमे की थी। कथाका वर्णन ऐसे ढंगसे किया है कि पढ़ने सुननेवाला समझ ही नही सकता कि वर्णन करनेवाला भिन्न धर्मावलम्बी है। क्या वैवाहिक आचार-व्यवहार और क्या पूजा-पाठका विधान सभी ऐसी उत्तम रीतिसे विधिवत् वर्णित किये है कि कोई हिन्दू कवि भी क्या कहेगा।

जायसीकी वर्णन करनेकी शैली बड़ी ही चमत्कारक है और इसलिये जो कुछ उन्होने कहना चाहा है, उसका रूप सामने खड़ा कर दिया है।

पद्मावतकी कथा संक्षेपसे इस प्रकार है :—

सिंहलद्वीपके राजा गन्धर्वसेनकी कुमारी पद्मावती रूप गुणमे अद्वितीय थी। इसके पास हीरामन नामक बड़ा सुन्दर और पण्डित तोता था। राजाके कोपके कारण सिंहलसे उड़कर वह चित्तौर पहुँचा, जहाँ राजा रतनसेनने उसे किसीसे एक लाख रुपयेमे खरीद लिया। एक दिन राजाकी अनुपस्थितिमे उसकी रानी नागमतीको अपने रूपका गर्व हुआ, तो इसने तोतेसे पूछा कि संसारमे मेरे समान भी कोई सुन्दरी है ? तोतेने जवाब दिया कि सिंहलकी राजकुमारी पद्मिनी और तुममे दिन और अंधेरी रातका अन्तर है। रानी लज्जित हुई और इस डरसे कि कहीं तोता राजासे पद्मिनीका हाल न कह दे, चेरीको आज्ञा दी कि तोतेको मार डाल। पर राजाके भयसे चेरीने उसे न मारकर अपने घरमे छिपा रखा। राजाने लौटकर जब तोतेको न देखा, तब व्याकुल हुआ। जब तोता लाया गया, तब उसने सारी बाते कहकर पद्मिनीके रूप-लावण्यका बखान किया। सुनतेही राजा मूर्छित हो गया और उसकी खोजमे जोगी बनकर घरसे निकल पड़ा। आगे-आगे तोता था और इसके पीछे-पीछे १६ हजार राजकुँवर जोगियोके वेशमे थे। कलिंगसे जहाजोपर सवार हो यह जोगीदल अनेक कष्ट झेलता हुआ सिंहल पहुँचा।

राजाने एक शिवमन्दिरमे डेरा डाला और जोगियोके साथ पद्मावतीका ध्यान और जप करने लगा। हीरामनने पद्मावती को समाचार दिया। राजाके सच्चे प्रेमके प्रभावसे पद्मावती भी व्याकुल हुई और श्रीपंचमीके दिन शिवपूजनके लिये मन्दिरमे गयी। परन्तु राजा उसकी सुन्दरताको देख मूर्छित हो गया और वह लौट गयी। चेतना होनेपर राजा बड़ा अधीर हुआ। पद्मावतीने जब यह सुना तो कहलाया कि उस समय तो तुम चूक गये, अब तो गढ़पर चढ़ाई करो, तभी मुझे पा सकते हो। शिवजीसे सिद्धि प्राप्त कर राजा जोगियोसहित गढ़मे घुसने लगा, पर सवेरा हो जानेके कारण पकड़ लिया गया। गन्धर्व सेनकी आज्ञासे जब रतनसेनको सूलीपर चढाने के लिये लोग लिये जा रहे थे, तब १६ हजार जोगियोने गढ़पर धावा बोल दिया और उसे घेर लिया। महादेव, हनुमान आदि देवताओंकी सहायतासे रतनसेनकी जीत हुई। जोगियोमे महादेवजीको पहचान् गन्धर्व-सेनने उनसे कहा कि आप जिसे चाहे, पद्मावती दे दीजिये। बादको रतनसेन पद्मावतीको व्याह चित्तौर ले आये।

रतनसेनकी सभामे राघवचेतन एक पण्डित था। उसे यक्षिणी सिद्ध थी, इसलिये प्रतिपदाके दिन इसने चन्द्रमा दिखा दिया था। इसपर राजाने इसे निकाल दिया था। राजासे बदला लेनेके लिये राघवने अलाउद्दीन बादशाहसे पद्मिनीके सौन्दर्यकी बड़ी प्रशंसा की। फल यह हुआ कि अलाउद्दीनने रतनसेनसे कहला भेजा कि पद्मिनीको मेरे पास भेज दो। यह सुन राजा क्रुद्ध हुआ और लड़ाई

की तैयारी करने लगा। अलाउद्दीनने चित्तौर तो घेर लिया, पर गढ़मे घुस न सका। इसलिये सन्धिके प्रस्तावका छल किया। जब दोनो शतरंज खेल रहे थे, तब अलाउद्दीनको पद्मिनीके रूपकी झलक दर्पणमे दिखाई दी, तो मूर्छित हो गिर पड़ा। प्रस्थानके दिन जब राजा बाहरी फाटकतक उसे पहुँचाने गया, तब अलाउद्दीनके छिपे हुए सैनिकोने राजाको कैद कर दिल्ली भेज दिया।

पद्मिनी पहले तो व्याकुल हुई, अनन्तर राजाके उद्धारकी चेष्टा करने लगी। गोरा और बादल नामके दो वीर क्षत्रिय ७०० पालकियोमे सशस्त्र सिपाही छिपाकर दिल्ली पहुँचे और बादशाहसे कहलाया कि पद्मिनी रतनसेनसे मिलकर हरममे जायगी।

बादशाह इस चकमेमे आ गया। बस, एक पालकी रतनसेनकी कोठरीके सामने रखदी गयी, जिससे निकलकर एक लुहारने राजा की बेड़ियाँ काट दी और राजा पहलेसे ही तैयार घोडेपर सवार हो निकल भागा। गोरा तो शाही फौजको रोकता रहा और बादलने रतनसेनको चित्तौर पहुँचा दिया। चित्तौरमे पद्मिनीने उससे कहा कि कुम्भलनेरके राजा देवपालने दूती भेजी थी, तो उसने कुम्भलनेर जा घेरा। लड़ाईमे देवपाल और रतनसेन दोनो काम आये। रतनसेनकी मिट्टी चित्तौर लायी गयी और दोनो रानियाँ—पद्मावती और नागमती सती हो गयी। जब अलाउद्दीन चित्तौर पहुँचा, तो उसे राखका ढेर मिला।

अन्तमे कविने कथाका रहस्य इस प्रकार खोला है :—

तन चितउर मन राजा कीन्हा । हिय सिंहल बुधि पद्मिनि चीन्हा ॥
गुरू सुआ जेहि पन्थ देखावा । विन गुरु जगत् को निर्गुन पावा ॥
नागमती यह दुनिया धधा । बाँचा सोइ न एहि चित वंधा ॥
राघव दूत सोइ सैतानू । माया अलाउदी सुलतानू ।।
प्रेम-कथा यहि भाँति विचारू । बूझि लेहु जो बूझहि पारू ॥

हिन्दीपर सूफियोंके साहित्यका कोई प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि इन सूफी कवियोंके बाद हिन्दीमें तसव्वुफ सम्बन्धी कविता का पता नहीं मिलता। इसके साथ ही गो० तुलसीदासकी सगुण ब्रह्मसम्बन्धी कविताका लोगोंपर ख़ूब प्रभाव पड़ा और आज भी पड़ रहा है, क्योंकि रामायणके पात्र लोगोंके परिचित थे।

हिन्दीपर फ़ारसीका प्रभाव कैसे पड़ा?

हिन्दीपर फारसीके प्रभावका विचार करते समय हमे न भूलना चाहिये कि हिन्दी शब्दका यहाँ व्यापक अर्थमे प्रयोग किया गया है अर्थात् हिन्दी शब्दके अन्तर्गत उर्दू रूप भी आ गया है। फारसीका प्रभाव हिन्दीपर दो प्रकारसे पड़ा है, एकतो उर्दू रूपसे और दूसरे उर्दू द्वारा। उर्दू रूप फारसीका प्रत्यक्ष प्रभाव है और इसके मुख्य सहायक है—(१) लिपि, (२) व्याकरण (३) पिंगल, (४) इस्लामी संस्कृति और इस्लामी देशोका इतिहास, तथा भारतीय संस्कृति और इतिहासके ज्ञानका अभाव और उसकी उपेक्षा, (५) लेखन-शैली, (६) इस्लामी देशोके शब्दो और मुहावरोका अधिक प्रयोग तथा हिन्दी शब्दोका वहिष्कार, और (७) अरबीके पारिभाषिक शब्द। कैसे? देखिए।

(१) मुसलमान इस देशमे परदेशी थे और परदेशियोके लिये भाषा सीखना जितना सुगम और आवश्यक होता है, उतना लिपि सीखना नहीं होता। इसीलिये मुसलमानोने भाषा तो सुनसुनाकर सीख ली और अपने शब्द मिलाकर काम चलाने लगे, परन्तु लिपि न सीखी और अपनी ही लिपिमे हिन्दी भी लिखने लगे। यह कल्पना नहीं है, बल्कि ख़ुसरोकी एक पहेलीसे सिद्ध भी हो चुका है। इसके सिवा अङ्गरेजोने शुरू-शुरूमे जब उर्दू और हिन्दी सीखी थी, तब "बागो-वहार" और "प्रेमसागर" के रोमन लिपि

मे संस्करण बन गये थे। हिन्दीके अन्दरसे लिपि भिन्नताके कारण ही उर्दूकी नींव पड़ी।

(२) उर्दू आर्य भाषा है और फारसी भी आर्य भाषा है, यद्यपि फारसी शेमिटिक भाषा, अरबीके प्रभावमे आनेके कारण भीतरसे आर्य रहनेपर भी बाहरसे अनार्य हो गयी और इस आर्य-अनार्य भाषाका प्रभाव जब हिन्दीपर पड़ा, तो व्याकरणका रूप ही बदल गया। मुसलमान हिन्दी पढ़ते ही न थे, इसलिये हिन्दीका व्याकरण नहीं जानते थे यह कहना बहुत बड़ी बात है, क्योंकि औरङ्गजेबके जमानेमे मीरजा खॉ इब्न फखरुद्दीन मुहम्मदने "कवायद कुल्लियात भाखा" * लिखकर फारसीभाषियोके लिये ब्रजभाषाका व्याकरण सुलभ कर दिया था, जिससे नागरी भाषाकी प्रकृतिका परिचय उन्हे अनायास हो सकता था। परन्तु उर्दू व्याकरण जितने बने, सब अरबी व्याकरणके आधारपर और अरबी परिभाषाओसे युक्त थे और है। आर्य भाषापर यह अत्याचार देख कर भी इसका प्रतिकार किसीसे न बन पड़ा, यह अत्यन्त खेदकी बात है। आश्चर्यका विषय है कि अञ्जुमन तरक्कीए उर्दू के सेक्रेटरी और त्रैमासिक उर्दूके सुयोग्य सम्पादक मौलाना अब्दुलहक साहब तक कुछ नहीं कर सकते। उन्होने अपनी "कवायदे उर्दू" की भूमिकामे जो लिखा है, उसका भावार्थ इस प्रकार है :—

---

* A grammar of the Braj Bhakha by Mirza Khan, Visva Bharati Book-shop, 210 carnwallis St. Calcutta

"हमारे यहाँ अबतक जो पुस्तकें व्याकरणकी प्रचलित है, उनमे अरबी व्याकरणका अनुकरण किया गया है। उर्दू खालिस आरिया जबान है और इसका सम्बन्ध सीधा आर्य भाषाओसे है॥ इसके विरुद्ध अरबी भाषाका ताल्लुक सेमेटिक (सामी-अनार्य) भाषाओके परिवारसे है। इसलिये उर्दूका व्याकरण लिखनेमे अरबी जबानका अनुकरण किसी तरह जायज नहीं। दोनो ज़बानो-की विशेषताएँ बिल्कुल पृथक-पृथक है, जो विचारनेसे स्पष्ट प्रतीत हो जायगा। इसी तरह अगर्चे उर्दू हिन्दुस्तानमे जन्मी है और इसकी बुनियाद पुरानी हिन्दीपर है—क्रियापद, जो भाषाका प्रधान अङ्ग है, और सर्वनाम तथा कारक चिन्ह सबके सब हिन्दी है, सिर्फ संज्ञा और विशेषण अरबी फ़ारसीके दाखिल हो गये है और कुछ थोड़ेसे नाम धातु जो कुछ अरबी फारसी अलफाज़से बन गये है, जैसे बख्शना, कबूलना, तजवीजना वगैरह, वह किसी शुमारमे नहीं। बल्कि कुछ प्रतिष्ठित लोगोके मतमे ऐसे पद सही भी नहीं, फिर भी उर्दू भाषाके व्याकरणमे संस्कृत नियमोकी भी परिपाटीका पालन नहीं किया जा सकता।" *

(३) उर्दू कई शताब्दियोतक तो मुसलमानोकी बोलचालकी भाषा रही और उत्तर भारतमे यद्यपि यह हिन्दी और रेख्ता कहलाती थी, परन्तु दक्षिणमे पहुँचकर दकनी अर्थात् दक्षिणी कहलाने लगी। वहीं इसने साहित्य-क्षेत्रमे प्रवेश किया। वहाँके

---

* कवायदे उर्दू, मकदूमा पृष्ठ १८।

लोगोकी भापा हिन्दी तो थी ही नहीं, आर्य-भापा भी न थी, इससे वहाँकी भापाओसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता था और इसलिये उत्तरसे गये हुए मुसलमानोकी भापा हिन्दी, जो प्रारम्भिक रूपमे ही थी, फारसीसे ही अपना भाण्डार भरनेके लिये लाचार हुई। फारसीका कवायद (व्याकरण) और फारसीका ही अरूज (पिंगल) लेकर ही दकनी साहित्य-क्षेत्रमे अवतीर्ण हुई। इस विपयमे मौ० अब्दुल हक साहबने लिखा है :—

" . मुहम्मदकुली 'कुतुबशाह' की हुकूमत गोलकुण्डामे थी, जहाँ कि सरकार और दरबारी जबान फारसी थी और रिआयाकी जबान तिलंगी (तेलुगु)। यही हाल आदिलशाहियोका बीजापुरमे था कि मुल्कके आस-पासकी ज़बान 'कनड़ी' (कानड़ी) थी। यह दोनो ज़बानें 'द्रावड़ी' है और इन्हे आरियाई (आर्य) जबानोसे कोई ताल्लुक नहीं। इसलिये ज़ाहिर है कि इस मुल्कमे जब उर्दूने सूरत अख्तियार की, तो इसके खतोखाल (चेहरा-मुहरा-आकृति) क्या होगे। तिलंगी (तेलुगु) और कनड़ी (कानड़ी) दोनो अजनबी और ग़ैरमानूस (अपरिचित) इनसे किसी किस्मका मेल हो ही नहीं सकता। लामहाला (अन्ततोगत्वा) फारसीका रङ्ग इस (उर्दू) पर चढ़ गया। अव्वल तो फ़ारसी आरियाई, दूसरे सदहा-सालकी यकजाई, दोनो ऐसी घुल-मिल गयीं, जैसे शीरोशकर (दूध और खाँड़) आम असनाफे सखुन (कविताके प्रकार) मसलन् मसनवी, कसीदा, रुबाई, गज़ल उर्दूमे भी बिला तकल्लुफ आ गये। अलफाज़ (शब्द) तशबी-

हात (उपमाएँ) इस्तआरात (रूपक) बने-बनाये तैयार मिल गये। अलफाजके साथ खयालात भी दाखिल हो गये और-कसीदे मसनवी, रुबाई, और गजलमे भी वही शान आ गयी जो फारसीमे पायी जाती हैं, लेकिन सबसे बड़ा इनकलाब (क्रान्ति) जिसने उर्दू व हिन्दीमे इम्तियाज़ (भेद) पैदा कर दिया, वह यह था कि अरूजमे (पिंगलमे) भी फारसीकी ही तकलीद (अनुकरण) की गयी है और बगैर किसी तगय्युरो तवद्दुलके (परिवर्त्तनके) उसे उर्दूमे ले लिया। फारसीने इसे अरबीसे लिया था और उर्दूको फारसीसे मिला। अगर उर्दूको अदबी नशोनुमा (साहित्यिक-विकास) दकन (दक्षिण) मे हासिल न हुई होती, तो बहुत मुमकिन था कि बजाय फारसी अरूजके हिन्दी अरूज़ होता, क्योंकि दोआबा गंगो-जमनमे (अन्तर्वेदमे) आसपास हिन्दी थी और मुल्ककी आम जबान थी। बखिलाफ इसके दकनमे सिवाय फारसी के कोई इसका (उर्दूका) आश्ना (प्रेमी) न था। और यही वजह हुई कि फारसी इसपर छा गयी। वरना यह जो थोड़ासा इम्तियाज़ (भेद) उर्दू-हिन्दीमे पाया जाता है, वह भी न रहता और गालिबन् (सम्भवतः) यह उर्दूके हकमे बहुत बेहतर होता।"

× × ×

"अरूज़का कौमी ज़बान और खयालातसे खास लगाव होता है। उर्दूने इब्तिदासे (आरम्भसे) यानी जबसे इसे अदबी हैसियत (साहित्यिक-पद) मिली है, गैर ज़बानका अरूज अख्तियार

किया। अगर बजाय फारसी अरूजके हिन्दी अरूज होता, तो हिन्दी-उर्दू नज्म (पद्य) और ज़बानमें वह मगायरत (परायापन) जो इस वक्त नजर आती है, न रहती या बहुत कुछ कम हो जाती।"*

(४) जब मुसलमानोंने उर्दू में साहित्य-रचना आरम्भ किया, तब उनमें ऐसे साहित्यिक नहींके बराबर थे, जो इस्लामी देशों के इतिहास और संस्कृतिके सिवा और भी किसी संस्कृति अथवा इतिहासका पता रखते हों और भारतके तो वे बादशाह थे, इसलिये इसकी संस्कृति, साहित्य और इतिहासको उन्होंने कभी जानने योग्य ही नहीं समझा। इस कथनकी पुष्टिमें "दरिया-ए-लताफत" से सैयद इनशाअल्ला खाँकी यह राय उद्धृत की जाती है :—

"बर साहबे-तमीजाँ पोशीदा नीस्त कि हिन्दुआँ सलीका दर रफ्तारो-गुफ्तार व ख़ुराको पोशाक अज मुसलमानान याद गिरफ्ताअन्द। दरहेच मुकाम कौलोफेल ईहाँ मनाते ऐतबार न मी तमानाद शुद।"

अर्थात् बुद्धिमानोंसे यह बात छिपी नहीं है कि हिन्दुओंने बोलचाल, चालढाल, खाना और पहनना इन सब बातोंका सलीका मुसलमानोंसे सीखा है, किसी बातमें भी इनका कौल-फेल ऐतबारके काबिल नहीं।

---

* "कुल्लियात सुलतान मुहम्मदकुली कुतुबशाह" पर मौ० अब्दुलहक़ साहबका नोट "उर्दू" त्रैमासिक जनवरी १९२२।

लार्ड मेकालेने बंगालियोकी निन्दामे जो कुछ लिखा है, वही सैयद इनशाकी कुछ पक्तियोमे सारी हिन्दूजातिके विषयमे कह दिया गया था, यद्यपि अलवेरुनीकी "किताबुल हिन्द" से ये हिन्दू संस्कृतिके विषयका ज्ञान प्राप्त कर सकते थे। क्या आश्चर्य है कि सैयद इनशाकी अज्ञतापूर्ण बाते पढ़कर कई तथोक्त हिन्दू अपनी हीनताका अनुभव करने लगे और मुसलमानोको सभ्य-शिरोमणि मानने लगें। सच तो यह है कि उस समयके मुसलमान लेखक गूलरके कीडेकी तरह इस्लामी जगत् को ब्रह्माण्ड समझते थे। इस समझके कारण उनकी कविताका विपय उनका परिचित संसार ही होता था।

(५) हिन्दी और उर्दू की लेखनकलामे अन्तर है, क्योकि हिन्दीका अक्षय भण्डार संस्कृत और प्राकृत तथा उर्दू का अरबी-फारसी है। फारसीकी देखादेखी उर्दू के कवियोने भी वुलवुल और गुलपर कविता की है, जो ईरानी उपमाओ और उपमानोसे भरी पड़ी है। ऑखकी उपमा हमारे यहाॅ कमल, मीन और हरिनकी ऑखसे दी जाती है, यथा, पद्मनेत्रा, मीनाक्षी और मृगनयनी। "हरिनी के नैनानते हरि नीके ये नैन" कहते है। यहाॅ बड़ी-बड़ी ऑखे हृदयानन्ददायिनी समझी जाती है। नवाव खानेखानाॅ ने भी अपनी हिन्दी कवितामे "ज्यो वड़री ॲखियान लखि ऑखिन को सुख होत" लिखा है। परन्तु उर्दू फारसीके हिन्दुस्तानी शाइरोने ऑखकी उपमा "नर्गिस" और "बादाम" से दी है। मौलाना शिवलीको यह बात बहुत खटकी, इसलिये उन्होने लिखा कि

"आँखकी तशबीह (उपमा) नर्गिससे आम (प्रसिद्ध) है, लेकिन नर्गिसको देखा तो, उसका फूल एक गोलसी कटोरी होती है, जिसको आँखसे मुनासिबत (सादृश्य सम्बन्ध) नहीं। खोजसे मालूम हुआ कि इब्तदाए शाइरीमे (फारसी कविताके प्रारम्भिक कालमे) तुर्क माशूक थे। उनकी आँखे छोटी और गोल होती है, इसी बिना (आधार) पर पुराने शाइर आँखोके छोटे होनेकी तारीफ करते है।"

यही हाल बुलबुल और गुलाबका है। फारसमे तो वसन्त ऋतु मे गुलाब खिला और बुलबुल आकर उसपर बैठकर चहचहाने लगी, तो चहचहाते और बोलते बोलते मस्त हो जाती, उसका सीना फट जाता और वह मर जाती है। भारतमे ऐसी घटना कभी हुई ही नहीं, पर तो भी यहाँके उर्दू फारसी के शाइर बुलबुलका वैसा ही रोना रोते हैं। इसी तरह प्रेमका प्रारम्भ यहाँ पहले स्त्रीकी ओरसे होता है और फिर उसकी प्रेमचेष्टा देखकर पुरुषोकी ओरसे। परन्तु उर्दू फारसीके शाइरोकी लीला ही विचित्र है। वहाँ स्त्रीका अधिकार वा अस्तित्वही नहीं है। प्रेमी पुरुष प्रेम-पात्र पुरुषपर आसक्त होता है जो अप्राकृत है। यद्यपि मौलाना हाली और शिबलीने इसकी निन्दा की है, तथापि उर्दू कवियोकी प्रकृति बदलनेमे वे समर्थ नहीं हुए।

उर्दू और हिन्दीकी लेखनकलामे क्यो और कैसे आकाश-पातालका अन्तर पड़ गया, इस विषयमे मौलाना मुहम्मद हुसैन "आजाद" मरहूम अपनी "आबेहयात" किताबमे लिखते है :—

"शाइराना उर्दूका नौजवान जिसने फारसीके दूदसे परवरिश पायी, उसकी तबीयतमे बहुतसे बुलन्द खयालात (उच्च विचार) और मुबालगा मजामीन (अतिशयोक्त विषयो) के साथ वह हालात और मुल्की रस्मे और तारीखी इशारे (ऐतिहासिक सङ्केत) आ गये जो फारस और तुर्किस्तानसे खास ताल्लुक रखते थे और भाषाके तबई मुखालिफ (प्रकृतिके विरोधी) थे। साथ इसके फारसीकी नजाकत (कोमलता) और लताफत तबई (प्राकृतिक सुघड़पन) के सबबसे उर्दूके खयालात (विचार) अक्सर ऐसे पेचीदा (जटिल) हो गये कि (जो) बचपनसे हमारे कानमे पड़ते और जेहनो (ध्यानो) मे जमते चले आते है, इसलिये हमे मुश्किल नही मालूम होते। अनपढ़ अनजान या गैर ज़बानवाला (अन्य भाषाभाषी) इन्सान सुनता है, तो मुहँ देखता रह जाता है कि यह क्या कहा। इसलिये उर्दू पढ़नेवालेको वाजिब है कि फारसीकी इन्शापर्दाजी (लेखनकला) से जरूर आगाही (अभिज्ञता) रखता हो।

"फारसी और उर्दूकी इन्शापरदाजी (लेखनकला) मे जो दुश्वारी (कठिनाई) है और हिन्दीकी इन्शामे जो आसानी है, उसमे एक बारीक नुकता (महीन बात) गौरके लायक (ध्यान देने योग्य) है। वह यह है कि भाषा जिस शै (चीज) का बयान करती है, उसकी कैफियत हमे उन खतोखालसे (आकृतिसे) समझाती है, जो खास उसी शैके देखने, सुनने, सूँघने, चखने या छूनेसे हासिल होती है। इस बयानमे अगर्चे मुबालगेके जोर (अतिशयोक्तिका प्राबल्य) या जोशो खरोश (उत्साह और

चिल्लाहट) की धूमधाम नहीं होती, मगर सुननेवालेको असल शैके देखनेसे जो मजा आता है, वह सुननेसे आ जाता है। वरखिलाफ शोअराय फारसके कि (इसके विरुद्ध फारसके कविजन हैं) यह जिस शैका जिक्र करते हैं साफ उसीकी बुराई भलाई नहीं दिखाते, वल्कि इसके मुशावा'(सदृश) एक और शै, हमने जिसे अपनी जगह अच्छा या बुरा समझा हुआ है, उसके लवाजमातको (आवश्यक अंगोको) शै अव्वल (प्रथमोक्त वस्तु) पर लगाकर इनका वयान करते है। मसलन् (उदाहरणार्थ) फूलकी नजाकत (कोमलता) रंग और ख़ुशबूमे माशूकसे मुशाविह (समान) है। जव गर्मीकी शिद्दत (अधिकता) मे माशूकके हुस्न (सौन्दर्य) का अन्दाजा (ढंग) दिखाना हो तो कहेगे कि मारे गर्मीके फूलके रुखसारोसे (गालोसे) शवनम (ओस) का पसीना टपकने लगा।

"यह तशवीहे (उपमाएँ) और इस्तआरे (रूपक) अग पास पासके हो और आँखोके सामने हो तो कलाम (वक्तव्य मे निहायत लताफत (आनन्द) और नजाकत (कोमलता) पैद होती है। लेकिन जव दूर जा पड़े और वहुत वारीक पड़ जायँ त दिक्कत हो जाती है। चुनाँचे हमारे नाजुक खयाल (कोमल विचार) किसी वादशाहके इकवाल (भाग्य) और अक्लके लिये इस कदर तारीफपर कनाअत (सन्तोष) नहीं करते कि वह इकबालमे सिकन्दर यूनानी या अरस्तूसानी है। वल्कि बजाय इसके कहते है कि इसका हुमाए अक्ल (बुद्धिकी हुमा) ओज

इक़बालसे (भाग्यकी ऊँचाईसे) साया डाले, तो हर शख़्स किशवर दानिश (देशका विद्वान्) व दौलतका सिकन्दर और अरस्तू हो जाये. बल्कि अगर इसके सीनेमें (हृदयमें) दलायल अक़ली (बुद्धिके तर्कों) का दरया जोश मारे तो तब्क़े यूनानको (यूनानके ज्ञानियोंकी श्रेणी को) ग़र्क़ कर (डुबा) दे। अव्वल तो हुमाकी* यह सिफ़्त (गुण) खुद एक बेबुनियाद फ़र्ज़ (निराधार कल्पना) है और वह भी इसी मुल्कके साथ खास है। इसपर इक़बालका एक फ़लकुल अफ़लाक (आकाशोंका आकाश) तैयार करना और उसपर तुक़ाए ओजका दर्याफ़्त करना देखिये। वहाँ उनके फ़र्ज़ी (कल्पित) हुमाका जाना देखिये। फिर उसी फ़र्ज़ी हुमाकी बर्कतका इस क़दर आम (प्रसिद्ध) करना देखिये. जिससे दुनियाके जाहिल (मूर्ख) इस ख़याली (कल्पित) यूनानमें जाकर अरस्तू हो जाँय।

दूसरे फ़िक़रेमें, अव्वल तो उल्माए हिन्दने (भारतीय विद्वानोंने) तेवरसे तूफ़ानका निकलना माना ही नहीं है। इसपर तबक़ाए यूनानका (यूनानकी श्रेणियोंका) अपने फ़िलसफ़ेकी तुहमतमें (अभियोगमें) तबाह होना वग़ैरह वग़ैरह ऐसी बातें और रवायतें (परम्पराएँ) है कि अगर्चे हमारे मामूली ख़यालात हों, मगर ग़ैर क़ौम बल्कि हमारे भी आम लोग उससे बेख़बर हैं, इसलिये बेसमझाये न समझेंगे। और जब बातको ज़बानसे कहकर समझानेकी नौबत आयी तो

* पक्षी विशेष जो कल्पित ही होता है।

लुत्फ़ जबान कुजा (भाषाका मज़ा कहाँ) और यह नहीं तो तासीर (प्रभाव) कुजा (कहाँ) ? मज़ा वही है कि आधी बात कही आधी मुँहमे है और सुननेवाला फड़क उठा। तार बाजा और राग बूझा। इन ख़याली रंगीनियो और फर्जी लताफतो (काल्पनिक आनन्द) का नतीजा (परिणाम) यह हुआ कि बातें बदीही (प्रकट) है और महसूसातमे (अनुभवोमे) अयाँ (स्पष्ट) है, हमारी तशबीहो (उपमाओ) और इस्तआरो (रूपको) के पेच दरपेच खयालोमे आकर वह भी आलमे तसव्वरमे (कल्पनाके जगतमे) जा पड़ती हैं, क्योकि खयालातके अदा करनेमे हम अव्वल आशियाए बेजानको (निर्जीव वस्तुओको) जानदार बल्कि अकसर इन्सान फ़र्ज (कल्पना) करते है। बाद इसके जानदारो और आकिलोके लिये जो मुनासिब हाल है, इन बेजानोपर लगाकर ऐसे ऐसे खयालात पैदा करते है, जो अक्सर मुल्के अरब या फारस या तुर्किस्तानके साथ कौमी (जातीय) या मजहबी खुसूसियत (विशेषता) रखते है।*

(६) उर्दू और हिन्दीमे प्रभेद बढ़ाने और उर्दूको हिन्दुस्तानी मुसलमानोकी कौमी जबान बनानेका काम उर्दू शाइरोने अपने जिम्मे ले लिया और वह इस तरह कि उर्दूसे हिन्दी शब्दो और मुहावरोका बड़ी बेरहमीसे बहिष्कार करना फर्ज समझा। अमीर खुसरो और नज़ीर अकबराबादी जैसे इने-गिने शाइरोको

* आबे हयात पृष्ठ ५३, ५४।

छोड़कर सभी इस काममे लग गये थे। इसका क्या प्रभाव पड़ा, इस विषय मे मौ० अवदुलहक साहब फर्माते है :—

" . बादके उर्दू शोअरा (शाइरो) पर फारसीका रंग ऐसा ग़ालिब आया कि यह खुसूसियत (विशेषता) उर्दू शाइरीसे बिल्कुल उठ गयी और रफ्ता-रफ्ता बहुतसे हिन्दी अलफाज (शब्द) जवानसे खारिज हो गये और उस्तादी अलफाजके मत-रूक (परित्यक्त) करनेमे रह गयी।

". बादमे ऐसे अदीव (साहित्यिक) और शाइर आये जो मये शीराजके मतवाले थे। इन्हे जो चीज़े अजनवी और ग़ैरमानूस (अपरिचित) और अपने जौकके (रुचिके) खिलाफ नजर आयीं, वह उन्होने चुन-चुनकर फेक दी और बजाय हिन्दीके फारसी अन्सर (अंश) गालिब आ गया। इसमे वली और उसके हम-असर (समसामयिक) भी एक हद्तक काबिले इलजाम है। . इस जमानेमे मौलवी हाली एक ऐसे शाइर हुए है, जिन्होने उर्दूमे हिन्दीकी चाशनी देकर कलाममे शीरीनी (मधुरता) पैदा कर दी है, मगर हम-असर शोअरामे इसकी कुछ कद्र न हुई।"

(७) हिन्दीको उर्दूसे अलग करनेवाली अन्तिम, पर किसीसे कम नहीं, बात यह हुई कि प्रारम्भसे ही उर्दूमे इस्ता-हात (पारिभाषिक शब्द) अरवीसे लिये गये और आज भी लिये जा रहे है। इसका फल यह हुआ कि हिन्दीके पारिभाषिक शब्द जो संस्कृतसे लिये जाते है, उर्दूवाले नहीं समझते और उर्दूके

पारिभाषिक शब्द हिन्दीवालोकी समझमे नहीं आते। इस प्रकार एक भाषाके दो रूप एक दूसरेसे जुदा हो गये और हिन्दीके लिये उर्दू और उर्दूके लिये हिन्दी भिन्न भाषा बन गयी। रेखा-गणितके तिकोनेको हिन्दीमे तो त्रिकोण कहते है और उर्दूमे मुसल्लस; इसी तरह कोना हिन्दीमे 'कोण' और उर्दूमे 'ज़ाविया' कहाता है। यही अन्य विज्ञानोके पारिभाषिक शब्दोके विषयमे समझना चाहिये। इस प्रकार हिन्दी उर्दूवालोके लिये और उर्दू हिन्दीवालोके लिये अपरिचित हो गयी। आश्चर्य है कि इन बातो-का कुछ ध्यान न रख हमारे कुछ राजनीतिक नेता दोनोको एक करनेके सुपने अब तक देख ही रहे है।

कुछ विद्वान् मुसलमान चाहते है कि हिन्दी-उर्दूके बीचकी खाईं जो दिनोदिन चौड़ी होती जाती है, पाट दी जाय, पर जैसे अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता, वैसे ही ये भी सिर्फ राय ज़ाहिर करनेके सिवा कुछ कर नहीं सकते। फिर भी इनके मतका मूल्य है और उससे भाषाके इतिहास और संगठनपर प्रकाश पड़ता है। "वज़ै इस्तलाहात" (परिभाषा निर्माण) नामकी अपनी पुस्तकमे उस्मानिया कॉलेजके भूतपूर्व प्रोफेसर मौलवी वहीदुद्दीन साहब "सलीम" पानीपती मरहूमने लिखा है:—

"......मगर जो हज़रात वज़ै इस्तलाहात (परिभाषानिर्माण) मे अरबियतके (अरबीपनके) हामी हैं, वह तो फारसी ज़बानसे भी इस्तलाहे बनानेके रवादार नहीं हैं, हिन्दीका तो क्या जिक्र है। फिर एक गिरोह (सम्प्रदाय) है, जो इस्तलाहातमे फारसीकी

आमेजिशको (मिश्रणको) तो जायज रखता है, लेकिन हिन्दी मेलसे नफरतका इज़हार करता है, गरजे़ कि यह दोनो गिरोह इल्मी इस्तलाहातमे (वैज्ञानिक परिभाषाओंमे) हिन्दीकी मदाखलत को (हस्तक्षेपको) पसन्द नहीं करते। उनके नजदीक वह इस्त-लाहे, जो हिन्दी अलफाज़से बनायी जायॅ और हिन्दीके मख़सूस (विशिष्ट) हरूफ ट, ड, ड़ और मखलूतहा (गडवड किये हुए) फ, भ, थ, ढ, ढ़, ह, ख, घ, ल्ह, म्ह, न्ह शामिल हो, महज़ बाज़ारी और मुव्तज़ल (अशिष्ट) अलफाज़ होंगे।

"हमारे नज़दीक यह खयाल सख़्त गलतीपर मबनी (आधा-रित) है। हिन्दी हमारी महबूब (प्यारी) ज़बान उर्दू के लिये, जिसको हम दिन रात घरोंमे, बाज़ारोंमे, महफिलो और मजलिसो मे, मदरसो और कारख़ानोंमे और हर मुकाममे और हर हालतमे बोलते हैं, और इसीको हमेशा लिखते और पढ़ते हैं, बमंज़िले ज़मीनके (भूमिके समान) है। इसी ज़मीनपर फ़ारसी और अरबीके पौदे लगाये गये है। इसी तख्तेपर गैरज़बानोंने (दूसरी भाषाओंने) आकर गुलकारी की है। अगर यह ज़मीन यानी हिन्दी निकाल दी जाय, तो फिर उर्दू ज़बानका नामो-निशान भी बाकी न रहेगा। हिन्दीको हम अपनी ज़बानके लिये उमुल्लिसान (भाषाकी जननी) और हमूलाये अव्वल (मूलतत्व) कह सकते है। इसके बगैर हमारी जबानकी कोई हस्ती नहीं है। इसकी मददके बगैर हम एक जुमला (वाक्य) भी नहीं बोल सकते। जो लोग हिन्दीसे मुहव्बत नहीं रखते, वह उर्दू ज़बानके हामी नही है,

फ़ारसी, अरबी या किसी दूसरी ज़बानके हामी हो तो हो। क्या वह हिन्दी अस्माओ अफआल (संज्ञा और क्रियापद) जिनको हम रात-दिन, चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते और सोते-जागते इस्तेमाल करते है, मुब्तज़ल और बाज़ारी हो सकते है? क्या हमारे उलमा (विद्वान्) खवासो अशराफ (विशिष्ट और कुलीन सज्जन) इन आस्माओ अफआलको बेतकल्लुफ (निःसङ्कोच, अनायास) अपनी ज़बानोंपर नहीं लाते? फिर यह क्या है कि जो अलफाज़ अदनाओ आला, आमोखास, जाहिलो आलिम सबको ज़बानोंपर है, वह हर किस्मकी गुफ्तगू और खतो किताबतके वक़् तो मुब्तज़ल और बाज़ारी नही होते, मगर इल्मी इस्तलाहात बनाते वक़् उनको मुब्तज़ल और बाजारी कहा जाता है! क्या उर्दू ज़बानमे सब जबानो से ज़्यादा कसीर तादाद (बहुसंख्यक) हिन्दीके* अलफाज़ नही है? क्या हिन्दीके खास हुरूफ (ख, ढ़, भ आदि) हम बेतकल्लुफ (अनायास) अदा नही करते? क्या हम ऐसे अलफाज़, जिसमे यह हुरूफ हो, अपनी जबानसे छीलकर दूर कर सकते है? क्या इन हरूफके बोलनेसे हम हमेशाके लिये तोबा कर सकते है? अगर नहीं, तो क्या फिर हर मौकेपर इन अल-

---

* सैयद अहमद देहलवीके मशहूर उर्दू लुगात (कोष) "फ़हरङ्ग आसफिया" में शब्दोंकी संख्या ५४००६ बतायी गयी है, जिसका ब्योरा इस भाँति दिया हुआ है :—

फाज़ और इन हरूफको इस्तेमाल करना और हर फसीहसे फसीह तकरीर और तहरीरमे इनको दखल देना और एक खास मौके पर, यानी वजै इस्तलाहातके वक्त, उन अलफाज व हरूफ को उनके शानदार दर्जेसे गिरा देना और मुव्तजल और बाजारी की फबती उनपर चस्पाँ करना सरासर मुहमिल (असम्बद्ध) और बेमानी नहीं है ?

"आखिर हिन्दी अलफाजको सखीफ (बेहूदा) और मुव्तजल समझनेकी वजह क्या है ? इसकी वजह साफ जाहिर है। जो

हिन्दी जिसके साथ पञ्जाबी और पूर्बी जबानके बाज़ खास अलफाज भी शामिल हैं		.	.	२१६४४
उर्दू यानी वह अलफाज जो गैर जबानोंसे हिन्दीके साथ मिलकर बने हैं		...	..	१७५०४
अरबी	...	...	..	७५८५
फारसी	.	...	...	६०४१
संस्कृत	...		..	५५४
अङ्गरेजी	.	...	..	५००
मुख्तलिफ (विविध)		..	...	१८१
				५४००६

मुख्तलिफके अन्तर्गत ये भाषाएँ और इनके शब्द गिनाये गये हैं.—

तुर्की	...	.	...	१०५

क़ौम अपने दर्जेसे गिर जाती है, वह हुर्रियत (स्वतन्त्रता) का ताज सिरसे उतारकर ग़ुलामीका तौक़ पहन लेती है, वह अपनी हर चीज़को पस्तो ज़लील समझने लगती है। अपना मज़हब दूसरोके मज़हबोके मुकाबिलेमे, उन्हे अदना और कमज़ोर नज़र आता है। ग़ैरोके इखलाक़ और आदाबोरसूम (चरित्र और आचार-व्यवहार) अपने इखलाक और आदाबोरसूमसे अच्छे दिखाई देते हैं। इसी तरह अपनी ज़बान भी उन्हे ग़ैरोकी ज़बानो की निस्बत नाशाइस्ता (अशिष्ट) और कममाया (दरिद्र) मालूम होती है। ग़ैर ज़बानोके अलफाज़ उनकी नज़रमे निहायत शानदार और अरफा (उच्चतम) हो जाते हैं और अपनी ज़बानके अलफाज़ हकीर (तुच्छ) और मुब्तज़ल मालूम होते है। यह मैलान

इब्रानी (Hebrew)	...	११	१८
सुरयानी	...	७	
यूनानी (Greek)	...	...	२६
पुर्त्तगाली (Portuguese)		..	१६
लातीनी (Latin)	...	..	४
फरासीसी (French)	...	...	३
पाली	...	..	२
बर्मी	...	...	२
मलाबारी	...	...	१
हस्पानवी (Spanish)	...	...	१
		कुल	१८१

(झुकाव) गिरी हुई कौमके तमाम मामलात व हालातपर यकसाँ तौरसे हावी हो जाता है।

"हमको इस धोकेसे बचना चाहिये और हिन्दी जबानके अलफाज़ व हरूफसे, जो हमारी ज़बानकी फितरतमे (पैदाइशमे) दाखिल है, नाक-भौ चढ़ानी नहीं चाहिये। हम जिस तरह अरबी और फारसीसे इस्तलाहात लेते है, इसी तरह हिन्दीसे भी बेतकल्लुफ वजै इस्तलाहातसे काम लेना चाहिये और हिन्दी अलफाज को, जो हमारी जबानके मानूसो महबूब (परिचित और प्रिय) अलफाज़ है, बाज़ारी और मुब्तज़ल कहकर दुनियाकी नजरमे अपने तईं गैर-मोहज्जब (असभ्य) और तनज्जुलयाफ्ता (पतित) साबित करना नहीं चाहिये। इस वसूलसे (सिद्धान्तसे) सिर्फ उस सूरतमे हटना चाहिये जब कि हिन्दीके अख्तियारकरदा (अंगीकृत) मुफरद (अधूरे) अलफाजसे मुरक्कब (दूसरे शब्दो से बने) इस्तलाहात तैयार करनेमे कोई दुशवारी पेश आये।"*

इन अवतरणोसे सिद्ध हो गया कि किन कारणोसे हिन्दी उर्दूमे भेद पड़ा और क्यो वह भेद दूर नहीं होता। अब हम यह बता कर इस प्रसङ्गको समाप्त करना चाहते है कि हिन्दी उर्दूकी खाईं पाटनेका प्रयत्न जो उर्दूके दो-एक विद्वान् और साहित्यिक करते भी है, उसमे अन्य विद्वानोका सहयोग उन्हे नहीं प्राप्त होता, इसलिये उनका यह उद्योग अरण्यरोदनसा होता है। ऊपर दूसरे सिल-

* वजै इस्तलाहात पृ० १७५-७७

सिलेमे मौलाना अब्दुल हक साहबकी यह राय उद्धृत की जा चुकी है कि इस जमानेमे मौलवी हाली एक ऐसे शाइर हुए है जिन्होने उर्दूमे हिन्दीकी चाशनी देकर कलाममे शीरीनी पैदा कर दी है, मगर हमअसर शोअरामे इसकी कुछ कदर न हुई। यही नही, स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा कहते है—"उर्दूके धनी तो मौलाना हालीको भी (जिनकी सारी उम्र देहलीमे रहते बीती और ग़ालिब और शेफता जैसे बाकमाल बुजुर्गोके सत्सङ्ग और सोसाइटीमे रहनेका जिन्हे निरन्तर सौभाग्य प्राप्त हुआ था और जो स्वयं एक आदर्श और उच्चकोटिके क्रान्तिकारी कवि थे, सिर्फ इस कसूरके कारण कि उनका जन्म दिल्लीमे न होकर पानीपतमे हुआ था यानी वह दिल्लीके रोड़े न थे) उर्दू-ए मुअल्लाका मालिक या फसीह और टकसाली उर्दू लिखनेवाला नही मानते थे।"[*] हालीने "दिल्ली की शाइरीका तनज्जुल" शीर्षक कवितामे इसी दुर्घटनाका उल्लेख भी किया है।

कोई सौ साल पहले मीर वली मुहम्मद नज़ीरने बहुतसी ऐसी कविता लिखी थी, जो हिन्दी और उर्दू दोनोकी कही जा सकती है। परन्तु इसकी पूछ उर्दूके शाइरोमे न हुई। मौ० हाली और नज़ीर दोनोका एक पाप तो यह था कि वे दिल्लीमे नही पैदा हुए थे और दूसरा यह था कि उनकी जबानमे हिन्दीके अलफाज भी होते थे, यद्यपि यह किसीने स्वीकार नही किया है, तथापि मौ० हालीने नजीरकी चर्चामे गुप्त रूपसे यह बात कह डाली है।

[*] हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी, पृ० १० का नोट

अपने मशहूर मुकद्मेमे मीर अनीसके बारेमे लिखते हुए उन्होने कहा है :—

"आजकल यूरोपमे शाइरोंके कमालका अन्दाजा इस बातसे भी किया जाता है कि उसने और शोअरासे किस कदर ज्यादा अलफाज खु.शसलीकगी (सुचातुरी) और शाइस्तगीसे (औचित्यसे) इस्तेमाल किये है। अगर हम भी इसीको मीयारे कमाल (योग्यता का आदर्श) करार दे तो भी मीर अनीसको उर्दू शोअरामे सबसे बरतर (श्रेष्ठतम) मानना पड़ेगा। अगर्चे नजीर अकबराबादीने शाद मीर अनीससे भी ज्यादा अलफाज इस्तेमाल किये है, मगर उसकी जबानको अहले-जबान कम मानते है, बखिलाफ मीर अनीसके उसके हर लफ्ज और मुहावरेके आगे सबको सर झुकाना पड़ता है।" [पृ० १८२]

इसमे नजीरका क्या कसूर ? यह उर्दू शोअराके तअस्सुबके सिवा क्या कहा जा सकता है ?

नजीरका देहान्त सन् १८३७ मे आगरेमे हुआ था। वे नज़ीर अकबराबादी प्रसिद्ध थे। आगरेका ताजगञ्ज मुहल्ला उस समय अकबराबाद कहलाता था, क्योंकि अकबरने बसाया था, और वहीं अकबरकी राजधानी थी। यदि आज उर्दू कविताका ढङ्ग वही होता, जो नज़ीरकी कविताका था, तो उर्दू हिन्दीके भेदका रोना या तो होता ही नहीं, यदि होता तो कम होता। परन्तु जिसने इस ढङ्गकी कविताकी, वह नजस (अपवित्र) समझा गया और सुकवियोंकी श्रेणीसे बहिष्कृत हुआ। परन्तु नज़ीर स्वतंत्र

कवि थे; उन्होने कभी इसकी परवा नही की। उनके श्रीकृष्ण-लीलाके फारसी छन्दमे कहे हुए पद रसखानके पदोंसे कुछ कम महत्वके नही हैं। उदाहरण स्वरूप ये पंक्तियाँ पढ़िये :—

यारो सुनो य दधिके लुटैयाक बालपन।
औ मधुपुरी नगरके बसैयाक बालपन॥
मोहन सरूप नृत्य करैयाक बालपन।
बन-बनमें ग्वाल गौएँ चरैयाक बालपन॥
ऐसा था बाँसुरीके बजैयाक बालपन।
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैयाक बालपन॥
पर्देमें बालपनके ये उनके मिलाप थे।
जोतीसरूप कहिये उन्हें सो वो आप थे॥

मृत्यु जैसे कठिन विषयोको सरल करके समझानेमे उन्हे कमाल हासिल था। मृत्यु क्या है, इसपर कहते है :—

जो मरना मरना कहते हैं, वह मरना क्या बतलाय कोई।
वाँ जो हर वाहें खोल मिले, सब अपनी अपनो छोड़ दुई॥
सी डाली आँख दुरङ्गीने जब एक रङ्गोने मार सुई।
नै मर्दोंका गुलशोर रहा नै औरतकी कुछ आह हुई॥
माटीकी माटी आग अगिन, जलनीर पवनकी पवन हुई।
अब किससे पूछिये कौन मुआ, और किससे कहिये कौन मुई॥
याँ एक तरफ तो दूल्हा था, और एक तरफको दुलहन थी।
जब दोनों मिलकर एक हुए, फिर बात रही क्या पर्देकी॥
नै राजाका सन्देह रहा, नै भेद रहा कुछ रानीमें।

जब घेरे मिल गये घेरोंमें, और पानी मिल गया पानीमे ॥
यॉ जिनको जीना मरना है, यार उन्हींको डरना है ।
जब दोनो दुखसुख दूर हुए, फिर जीना है ना मरना है ॥

नज़ीरका भाषापर असाधारण प्रभुत्व था। उनकी शैली बड़ी ही सुन्दर और मनमोहिनी थी, जिससे उनके शब्दोंका पाठकोपर वड़ा प्रभाव पड़ता था। वे लौकिक और पारलौकिक सभी विषयो-पर अपना मत स्पष्ट रूपसे सरल भाषामे प्रकट करते थे, जैसा इन अवतरणोंसे जाना जायगा :—

जोगीनामा

कोई कहता है कि जोगी जी किधरको आये ।
सच कहो कौनसी नगरीमें तुम्हारा है वतन ॥
तुम तो आते हो नजर हमको नयेसे जोगी ।
सच कहो जोग लिया तुमने य किसके कारन ॥
गर गुरू हुक्म हो वनवा दें तुम्हारा अस्थल ।
शहरमें बागमें या वरलबे दरियाए जमुन ॥
या कि मथुरा जो पसन्द आये तो वाँ जगह लें ।
या खदिरबनमें महावनमें हो या वृन्दावन ॥
जब तो सुन सुनके कहा मैंने य उससे बावा ।
तुमको क्या काम फकीरोंसे य करना अनवन ॥
और वतन पूछ हमारा तो य सुन बावा ।
या गली दोस्तकी या यारके घरका आँगन ॥

आदमीनामा

मसजिद भी आदमीने बनायी है याँ मियाँ।
बनते हैं आदमी ही इमाम और खुतबख्वाँ[1] ॥
पढते हैं आदमी ही कुरान और नमाज याँ।
और आदमी ही उनकी चुराते हैं जूतियाँ ॥
जो उनको ताड़ता है सो है वह भी आदमी ॥

बुढ़ापेनामा

क्या कहर[2] है यारो जिसे आ जाय बुढापा।
और ऐश जवानीके तईं आय बुढ़ापा ॥
इशरत[3] को मिला खाकमें गम लाय बुढ़ापा।
हर कामको हर बातको तरसाय बुढ़ापा ॥
सब चीज़को होता है बुरा हाय बुढ़ापा।
आशिकको तो अल्लाह न दिखलाय बुढ़ापा ॥

बञ्जारानामा

टुक हिर्सो[4] हवा को छोड़ मियाँ मत देश विदेश फिरे मारा।
कज्जाक[5] अजल[6] का लूटे है दिनरात बजाकर नक्कारा ॥
क्या बधिया भैंसा बैल शुतुर क्या गोनें पल्ला सिर भारा।

१—जुमेके रोज़ और विशेष अवसरोंपर बादशाहके लिये मसजिदों-में जो नमाज़ पढ़ी जाती है, वह .खुतबा कहाती है और उसे पढ़नेवाला खुत्बाख्वाँ कहा जाता है। २—ज़ोर-ज़बर्दस्ती। ३—.खुशदिली। ४—लालच। ५—डाकू। ६—मौतका वक़्त।

क्या गेहूँ चावल मोठ मटर क्या आग धुआँ और अङ्गारा ॥
सब ठाठ पडा रह जावेगा जब लाद चलेगा बञ्जारा ॥

× × ×

जब चलते चलते रस्तेमें ये गौन तेरी ढल जावेगी ।
इक बधिया तेरी मिट्टीपर फिर घास न चरने पावेगी ।
ये खेप जो तूने लादी है सब हिस्सोंमें बट जावेगी ।
धी पूत जँवाई बेटा क्या बञ्जारिन पास न आवेगी ॥
सब ठाठ पडा रह जावेगा जब लाद चलेगा बञ्जारा ॥

× × ×

जब मर्ग[1] फिराकर चाबुकको ये बैल बदनका हाँकेगा ।
कोई नाज समेटेगा तेरा कोई गौन सिये और टाँकेगा ॥
हो ढेर अकेला जङ्गलमें तू खाक लहद[2] की फाँकेगा ।
इस जङ्गलमें फिर आह "नजीर" इक भुनगा आन न झाँकेगा ॥
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बञ्जारा ॥

× × ×

फकीरोकी सदा

बटमार अजलका आ पहुँचा टुक इसको देख डरो बाबा ।
अब अश्क[3] बहाओ आँखोंसे और आहें सर्द भरो बाबा ॥
दिल हाथ उठा इस जीनेसे बेबस मनमार मरो बाबा ।
जब बापकी खातिर रोते थे अब अपनी ख़ातिर रो बाबा ॥

१—मौत । २—गढ़ा जिसमें लाश धोयी नहलायी जाती है ।
३—आँसू ।

तन सूखा कुबड़ी पीठ हुई घोड़े पै ज़ीन धरो बाबा ।
अब मौत नक़ारा बाज चुका चलनेकी फ़िक्र करो बाबा ॥

× × ×

गर चौथा बादी वक़्त हुआ जूँ दीवा पाके आन छुपी,
फिर देखा ध्यान हुए पहरे और आगे भी नुबिस्यार गयी ॥
सुख नींद गयी और भूख घटी दिल सुस्त हुआ आवाज़ नहीं ।
जो होनी थी सो हो गुज़री अब चलनेमें कुछ देर नहीं ॥
तन सूखा कुबड़ी पीठ हुई घोड़ेपर ज़ीन धरो बाबा ।
अब मौत नक़ारा बाज चुका चलनेकी फ़िक्र करो बाबा ॥

× × ×

घरबार रुपये और पैसेमें मत दिलको तुम ख़ुरसन्द[1] करो ।
या गोर बनाओ जङ्गलमें या जमनापर आनन्द करो ॥
मौत आन लतादेगी आख़िर कुछ मकर करो कुछ फन्द करो ।
बस ख़ूब तमाशा देख चुके अब आँखें अपनी बन्द करो ॥
तन सूखा, कुबड़ी पीठ हुई, घोड़ेपर ज़ीन धरो बाबा ।
अब मौत नक़ारा बाज चुका चलनेकी फ़िक्र करो बाबा ॥

× × ×

कलयुग

दुनिया अजब बाज़ार है कुछ जिन्स यॉंकी सात ले ।
नेकी का बदला नेक है बदसे बदीकी बात ले ॥

१—ख़ुश ।

मेवा खिला मेवा मिले फल फूल दे फल पात ले।
आराम दे आराम ले दुख-दर्द दे आफ़ात[५] ले॥
कलयुग नहीं करजुग है ये याँ दिनको दे और रात ले।
क्या ख़ूब सौदा नक़्द है इस हाथ दे उस हाथ ले॥

× × ×

काँटा किसीके मत लगा गर मिस्ले-गुल फूला है तू।
वह तेरे हक़में ज़हर है किस बातपर फूला है तू॥
मत आग में डाल औरको फिर घासका पूला है तू।
सुन रख यह नुकता बेख़बर किस बातपर फूला है तू॥
कलयुग नहीं, करजुग है ये याँ दिनको दे और रात ले।
क्या ख़ूब सौदा नक़्द है इस हाथ दे उस हाथ ले॥

× × ×

शोख़ी शरारत मक्र फ़न सबका बिसेखा है यहाँ।
जो जो दिखाया औरको वो आप देखा है यहाँ॥
खोटी खरा जो कुछ कि है तिसका परेखा है यहाँ।
जौ जौ पड़ा तुलता है दिल तिल तिलका लेखा है यहाँ॥
कलजुग नहीं करजुग है ये याँ दिनको दे और रात ले।
क्या ख़ूब सौदा नक़्द है इस हाथ दे उस हाथ ले॥

× × ×

बाँसरी

मोहनकी बाँसरीके मैं क्या क्या कहूँ जतन।
लय इसकी मनकी मोहनी धुन इसकी चित हरन॥

५—आफ़तें।

इस बाँसरीका आनके जिसका हुआ बचन ।
क्या जल-पवन "नज़ीर" परोरू व क्या हिरन ॥
सब सुननेवाले कह उठे जै जै हरी हरी ।
ऐसी बजायी किशन कन्हैयाने बाँसरी ॥
जब मुरलीधरने मुरलीको अपनी अधर धरी ।
क्या-क्या परेम मीत भरी इसमें धुन भरी ॥
लय इसमें राधे राधेकी हरदम भरी खरी ।
लहराई धुन जो उसकी इधर और उधर जरी ॥
सब सुननेवाले कह उठे जै जै हरी हरी ।
ऐसी बजायी किशन कन्हैयाने बाँसरी ॥
जिस आन कान्हजीको वो बन्सी बजावनी ।
जिस कानमें वो आवनी वाँ सुध भुलावनी ॥
हर मनकी होके मोहनी और चित लुभावनी ।
निकली जहाँ धुन उसकी वह मीठी लुभावनी ॥
सब सुननेवाले कह उठे जै जै हरी हरी ।
ऐसी बजायी किशन कन्हैयाने बाँसरी ॥

हिन्दीपर फ़ारसीका क्या प्रभाव पड़ा ?

फारसीका हिन्दीपर जो सबसे बडा प्रभाव पड़ा और जिससे एक नयी भाषा दो संस्कृतियो और दो भाषाओके मेलसे बन गयी, उसकी चर्चा हो चुकी। यहाँ अब यह देखना है कि हिन्दीके नागरी रूपपर फारसीका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अर्थात् उर्दूके द्वारा क्या प्रभाव पड़ा। किसी भाषापर अन्य भाषाका प्रभाव दो प्रकारसे पड़ता है। एक तो जब दो भाषाएँ परस्परके संसर्गमे आती है, तब एकके शब्द दूसरीमे कभी भाव समझाने, कभी अनुकरण या नकल करने और कभी मेल बढ़ानेके लिये प्रयुक्त किये जाते है और दूसरे जब किसी भाषाका राजनीतिक दृष्टिसे प्राधान्य होता है, तब उस भाषाके बोलनेवालोकी रीतिनीति, चाल-ढाल, पहनावे आदिका अनुकरण अधीन जाति करने लगती है, जिससे उसकी संस्कृतिके अनेक शब्द पराधीनोकी भाषामे आ जाते है। तुर्की भाषाका बाजार शब्द संसार व्यापी हो रहा है। उसका प्रयोग हिन्दीमे जैसे होता है, वैसे ही अङ्गरेजीमे भी होता है, यद्यपि हमारे यहाँ हाट और अङ्गरेजीमे मार्केट शब्द उसके लिये है, परन्तु फारसीका दुकान या दूकान शब्द जो हिन्दीमे चल रहा है, उसके बदलेका हिन्दी शब्द नहीं है। संस्कृतमे विपणि वा आपण और पंजाबीमे हट्टी कहते हैं। जो शब्द हिन्दीमे था, उसे दूकानने मैदानसे भगा दिया। पोर्चगीज़

लोगोंका शासन और ऊधम बम्बईपर कुछ समयतक रहा, पर इतने ही अल्प समयमे चावी, फालतू, गिरजा, आलू, पाव (रोटी) जैसे अनेक शब्द बम्बईकी भाषाओंको ही नहीं, हिन्दीको भी वे दे गये। अङ्गरेज़ भी डेढ़ सौ वर्षसे इस देशपर राज्य कर रहे है। इनके भी बहुतसे शब्द जब हमने ले लिये, तब मुसलमानों-का राज तो यहाँ सैकड़ो साल रहा। उनकी भाषाओंके शब्द यदि हमने लिये और उनके आचार-व्यवहारकी बाते सीखीं, तो इसमे आश्चर्य ही क्या है?

अब देखना चाहिये कि हिन्दीने फारसीसे क्या लिया। जो भाषा जितनी ही अधिक दूसरी भाषाके संसर्गमे रहती है, वह उतने ही अधिक उससे शब्द आदि लेती है। इस कारण हिन्दीने फारसीसे वस्त्रालङ्कारों, भोज्यपदार्थों तथा नित्यके व्यवहारमे आनेवाली हजारो वस्तुओंके नाम लिये तथा ऐसी बहुतसी चीजोंके नाम भी लिये, जिन्हे या तो हम जानते ही न थे और यदि जानते थे, तो उन नामोंको छोड़ नये नामोंका व्यवहार करने लगे। ये शब्द या तो फारसीने अपने पाससे हमे दिये या अरब और तुर्किस्तानसे लाकर। अदालती शब्द तो सभी अरबीके है और अदालत आप अरबीका शब्द है, यद्यपि हम लोग आज-कल इसके लिये न्यायालय, विचारालय, कोर्ट आदि शब्दोंका प्रयोग करते है। धर्माधिकरण, विनिश्चयालय जैसे शब्दोंका प्रयोग न होता है और न इनके समझनेवाले ही अधिक है। मुद्दई-मुद्दाअलेह अरबीके शब्द है। इनके बदले वादी प्रतिवादी

का व्यवहार कहीं-कहीं होता है, परन्तु संस्कृतके टकसाली शब्दो, अर्थी प्रत्यर्थीको लोग नहीं जानते। चन्दा, जिसका पर्यायवाचक "बरार" शब्द है और उसी अर्थमे प्रयुक्त भी होता है, फारसीका समझा जाता है, परन्तु वह पालीके छन्दक और संस्कृतके छन्दस्यसे बना है।

अब देखिये, हमने कैसे-कैसे शब्द फारसीसे लिये। वस्त्रोमे जामा और नीमा, बगलबन्दी और मिर्जई। जामा अङ्गरखेसे ज्यादा लम्बा होता था, जिसके पहननेसे सिर और पैरको छोड़ सारा बदन ढक जाता था। इसका घेर बहुत अधिक होता था और इसके बनानेमे एक थान लगता था। शाही दरबारमे हिन्दू मुसलमान दोनो जामा पहनकर जाते थे। पीछे ब्याह-शादीमे नौशे या दूल्हेको जामा पहनानेका रिवाज चल गया और उसके घरवाले बाप-दादे भी जामा पहन-पहन कर बरातोमे जाने लगे। अब बरातियोका जामा तो नहीं रहा, पर दूल्हेका बाकी है। वह भी अगले दस सालमे हवा हो जायगा और उसकी जगह कोट बैठ जायगा। जामेके नीचे जो कपड़ा underwear पहना जाता था, उसे नीमा* कहते थे। नीमा तो अब बिलकुल उठ ही गया है। बगलबन्दी जिसमे बगलोके नीचे बन्द या तनियाँ लगती है,

---

*नीमा शब्द निम्न वा नीचेके वस्त्रके अर्थमें बौद्धोंमें प्रयुक्त होता है, और इससे पालीसे सिद्ध हो सकता है। पर फारसीसे नहीं आया है, यह नहीं कह सकते।

जामेका और इसी तरह मिर्ज़ई अङ्गरखेका संक्षिप्त संस्करण है। ये दोनो कमरसे नीचे नही रहती। मिर्ज़ई "मिर्ज़ाकी" अर्थमे जान पड़ता है। मीरज़ा या मिर्ज़ा तुर्कोका खिताब या पदवी है। सम्भव है, तुर्क सिपाही जामेकी जगह मिर्ज़ई पहनते हो और वह हिन्दुओमे भी चल गयी हो। वस्त्र सम्बन्धी और नाम है—लबादा, क़बा, चोग़ा, आस्तीन, गरेबान, पायजामा, इजारबन्द, अम्मामा, रूमाल, शाल, दोशाला, बुर्का, तकिया, गावतकिया इत्यादि। अलङ्कारो या गहनोमे गुलूबन्द, हिमायल (हमेल), बाजूबन्द, जंजीर और पायजेब आदि तथा मेवे मिठाइयोमे किशमिश, पिस्ता, बादाम, मुनक्का, शहतूत, बेदाना, खूबानी, अञ्जीर, सेब, बिही, अनार, जलेबी, बालूशाही, हलवा इत्यादि है। इनके सिवा सैकड़ो और शब्द ऐसे चल रहे है, मानो हिन्दीके ही हो। दस्तरख्वान, चपाती, पुलाव, शुरबा (शोरबा), जर्दा, कलिया, कूर्मा, हरीरा (हरेरा), कबाब, अचार, मुरब्बा, गुलाब, बेदमुश्क, तबक, रकाबी, तश्तरी, चमचा, आबखोरा (अमखोरा), किश्ती, हम्माम, कीसा (खीसा), साबुन, शीशी, कहगिल (काहगिल), शीशा, शमादान, फ़ानूस, तॅवर (तन्नूर, तन्दूर), मुश्क, नमाज, रोजा, ईद, शबेबरात (शबरात), काज़ी, हुक्का, नैचा, चिलम, बन्दूक, तख़्ता नर्द, गंजीफा, हावन दस्ता (हमामदस्ता), आफताबा, फतीलसोज़ (पीतलसोज़), खोरा, खोरवा इत्यादि।

इस समय हिन्दीमे ऐसे अनेक अरबी, फारसी और तुर्की शब्द चल रहे है, जिनके बदले हिन्दी शब्द चलाना चाहे तो

कठिनतासे ढूँढ़े मिले। जैसे दलाल (दल्लाल), फर्राश, मजूर (मजदूर), वकील, बज़ाज (बज्जाज), जल्लाद, सराफ (सर्राफ), मसखरा, नसीहत, लिहाफ, तोशक, चादर, सूरत, शकल, चेहरा, तबियत, मिजाज, बर्फ, कबूतर, बुलबुल, पर, दावात, स्याही, जुलाब, रुक्का, ऐनक, चश्मा, सन्दूक, कुर्सी, तख्त, लगाम, ज़ीन, तङ्ग, रकाब, पायन्दाज, नाल, कोतल, वफा, जहाज़, मस्तूल, तहमत, दर्रा, पर्दा, दालान, तहखाना, तनखाह, मल्लाह, ताजा, गलत, सही, रसद, रसीद, कारीगर इत्यादि। शतरज भारतीय आविष्कार है, पर अरब और फारसकी जबसे सैर कर आयी है, तबसे विदेशी रङ्गढङ्गमे माती है। बादशाह, वजीर (फर्जी), रुख, फील इत्यादि नामोमे एक भी हिन्दी वा संस्कृतका नहीं है।

हिन्दीने फारसीसे संज्ञाशब्द इतने लिये कि उनकी गिनती नहीं हो सकती, परन्तु इतना किया कि इनके बहुवचन अपने ढङ्गसे बनाये और विभक्ति प्रत्यय अपने लगाये। "आदमी", "दरख्त", "मेवा" जैसे शब्द लेकर इनमे "ओ" जोड़कर पहले सामान्य रूप बनाया और फिर अपने विभक्ति प्रत्यय लगाकर इनका प्रयोग किया।

हिन्दी व्याकरणपर फारसीका जो प्रभाव पड़ा वह (१) शब्दोकी हिज्जे या वर्णन, (२) वचन, (३) लिग, (४) अव्यय, (५) संज्ञा, (६) विशेपण (७) क्रिया और (८) वाक्य-रचनामे देखा जाता है।

(१) हिन्दीमे वर्तमानकालिक क्रियापद पहले आवइ, कहइ, सुनइ, चलइ आदि लिखे जाते थे, तुलसीकृत रामायणमे इन्ही रूपोमे देखे भी जाते है। परन्तु कालान्तरमे सन्धिके नियमानुसार आवै, कहै, सुनै, चलै रूप बने और ये ही प्रचलित हो गये। फारसी अक्षरोंमे "ए" और "ऐ" के लिखनेमे कोई भेद नही हो सकता और उच्चारण करना तो उच्चारण करनेवालेके अधीन है, चाहे आवै कहे या आवे, सुनै कहे या सुने। परन्तु दोनोके अर्थोंमे जो सूक्ष्म भेद है, वह भी दो भिन्न-भिन्न रूप रखनेमे सहायक नही हुआ और उर्दूके अनुकरणने हिन्दीमे भी दोनो अर्थोंमे एक ही रूप कर दिया। इसी प्रकार भविष्यकालिक क्रियापदो "हूँगा" और "होऊँगा" के अर्थोंमे जो अन्तर है, उसके रहते हुए भी हम उर्दूकी देखादेखी "हूँगा" ही लिखते है और दोनोका भेद भूल गये है।

(२) बहुवचनके लिये एकवचनका प्रयोग उर्दूमे होता है। पहले तो उर्दू शाइर भी "वह" को वाहिद (एकवचन) और "वे" को जमा (बहुवचन) मानते थे और इनमे भेद किया करते थे, जैसे इस शेरमे किया गया है :—

> फिरते थे दश्त दश्त दिवाने किधर गये।
> वे आशिकीके हाय जमाने किधर गये॥

बादको बहुवचनमे भी "वह" ही लिखने लग गये।

> अँगूठी लालकी करती क़यामत आज गर होती।
> जिन्होंकी आन पहुँची लड़ मुए वह एक छल्लेपर॥

अब्रु ए यारका है सिरमें जिन्होंके सौदा ।
रक्स वह लोग किया करते है, तलवारोंपर ॥

अब कई हिन्दी-लेखक भी बहुवचनमे भी "यह" और "वह" ही लिखते हैं ।

(३) लिंग-विचारकी दृष्टिसे भी फ़ारसीका हिन्दीपर प्रभाव पड़ा है । चर्चा, गोशाला, पाठशाला, माला, साया, घन्टा, आत्मा, अग्नि, पवन, जलवायु इत्यादिके लिंग बदल गये । चर्चा संस्कृत शब्द और स्त्रीलिंग है । इसी प्रकार गोशाला, पाठशाला, माला, घन्टा शब्द स्त्रीलिंग है, परन्तु हिन्दीमे बहुधा पुलिङ्गमे प्रयुक्त होते है । आत्मा संस्कृत आत्मन् शब्दकी प्रथमाके एकवचनका रूप है, परन्तु रूह अरबी शब्द इसीका अर्थद्योतक स्त्रीलिंगमे है, इसी-लिये शायद यह भी स्त्रीलिंग बन गया । शेष शब्दोके विषयमे भी यही बात कही जा सकती है ।

इस देशकी स्त्रियाँ जब एकवचनका प्रयोग अपने लिये करती है, तब तो कहती है "मै आती हूँ", या "आती हूँ" परन्तु जब बहुव-चनका करती है, तब कहती है "हम आते है" या "आते है ।" इस ओर जब हमने कानपुरके सुप्रसिद्ध उर्दू मासिक "ज़माना" के सम्पादक अपने मित्र मुन्शी दयानारायणजी निगम बी० ए० का "ध्यान आकर्षित कर" कारण पूछा तो उन्होने लिखा कि यह प्रयोग लखनऊका खास है । इसे स्पष्ट करते हुए उन्होने लिखा कि स्त्रियोकी भाषाके अलावा भी लखनऊवालोमे यह मार्केकी बात

है कि एकवचनमे शब्दका प्रयोग करेंगे तो उसमे स्त्रीलिग क्रिया-पद देंगे और वहुवचनके प्रयोगमे पुंलिग क्रियापदका व्यवहार करेगे। जैसे, वे लिखेंगे "इसकी क्या वजह है?" पर जव इसी शब्दका वहुवचनमे प्रयोग करेंगे, तव लिखेंगे "इसके क्या वजूह है?" "वजह" शब्दका वहुवचन फारसीमे "वजूह" है। और भी, वे लिखेगे "वड़ी शर्त यह है" परन्तु जव वहुवचनमे लिखेंगे, तव कहेंगे "वड़े शरायत यह है।" मुन्शीजीका कहना है कि दिल्ली-वाले इसका अनुकरण नहीं करते।

(४) हिन्दी संश्लेपणात्मक भापा और फारसी विश्लेपणात्मक भापा है। इसलिये हिन्दीमे विभक्ति प्रत्यय शब्दके पीछे लगते है और फारसीमे शब्दके आगे। आगे लगनेवालोको उपसर्ग ही कहना चाहिये। हिन्दीमे जहॉ "हुक्मसे" "असलमे" "वदलेमे" या "जगहमे" लिखते है, वहॉ उर्दू फारसीवाले वहुक्म, दरअसल, वजाय लिखते है। अव हिन्दीमे भी ये पद वेरोकटोक लिखे जाते है। फारसीका सम्वन्धका चिन्ह "ए" जो कस्र कहाता है, उसने हिन्दीको विश्लेपणात्मक भापाका रूप देनेमे कुछ उठा नहीं रखा और "नयपाल-महाराज", "केसरी-सम्पादक", जैसे समस्त पदोके वदले हिन्दीमे "महाराज नेपाल", "सम्पादक केसरी" जैसे प्रयोग वेरोक-टोक होने लगे। फारसीके सम्वन्धवाचक चिह्न "ए" का भी लोप हो गया। "कमसे कम" के लिये तो फारसी न जाननेवाले हिन्दीदॉ भी "कम अज कम" वोलते है। अव्यय भी हमने यथेष्ट संख्यामे लिये हैं। देखिये :—

क्रियाविशेषणोंमें जल्द, बिल्कुल, यानी, बेशक, अलबत्ता, जरूर-जरूर, हर्गिज, करीब-करीब, वगैरह, फौरन, मसलन, बगैर, खुदबखुद, खाहमखाह, शायद, खैर, राजीखुशी, वाकई।

सम्बन्धवाचक अव्ययोंमें करीब, बदले, लायक, मानिन्द, बाबत, खातिर, वास्ते, तरफ, बाद, बिला।

समुच्चयबोधक अव्ययोंमें सिवा, सिवाय, अलावा, मगर, लेकिन, या, वर्ना, बावजूद, बशर्ते, अगर, अगर्चे, चूँकि, चुनाचे, बल्कि, ताकि, गोया, कि, व।

विस्मयादिबोधक अव्ययोंमें शाबाश, (शादबाश)

(५) हिन्दीमे फारसी या इसके द्वारा अरबी आदिसे सज्ञा शब्द असंख्य आये और इनका केवल संज्ञा रूपसे ही व्यवहार नहीं हुआ, बल्कि "होना" "करना" आदि क्रियाएँ लगाकर क्रिया-पदोकी भाँति ये काममे लाये गये। बात इतनी बनी रही कि शब्द लिये गये, पर व्याकरण हिन्दीका ही रहा। फारसी और अरबीके अनुकरणपर हिन्दीमे भी शब्द बनाये गये, जैसे शतरंजबाजके ढंगपर हिन्दीमे पतगबाज, चौपड़बाज आदि तथा वफादारके तर्ज-पर थानादार, रसोईदार, समझदार जैसे शब्द चले। कलमदानके ढंगपर खासदान, पानदान और पीकदान बने। कटोरदान बना तो इसी ढंगसे, पर अर्थमे भिन्न है। कुतुबखाना, मयखाना, दीवानखाना जैसे शब्दोंके अनुकरणपर जेलखाना, पागलखाना, मोदीखाना, पैखाना जैसे शब्दोंकी सृष्टि हुई। बागवान, दरबान

जैसे शब्दोंकी नकलपर हाथीवान, वहलवान, गाड़ीवान जैसे शब्द हिन्दीमें चलने लगे। ऐसे ही आईनानुसार, असरकारक, जिलाधीश आदि शब्द भी हैं।

हिन्दीने फारसीसे कहावतें भी लीं और कई महावरों और कहावतोंका तर्जुमा भी कर लिया। कहीं-कहीं तो ये इस ढंगसे हमारी भाषाके अङ्ग हो रही हैं, जैसे "गुल खिलता है" का अर्थ स्पष्ट है "फूल खिलता है"; परन्तु जब हम कहते हैं कि "फूल खिलता है" तो इससे रहस्यके उद्घाटनका भाव व्यक्त नहीं होता। इसलिये "गुल खिलना" हमारी भाषासे निकल नहीं सकता। इसी तरह है "बिस्मिल्ला ही गलत।" इसका अर्थ है कि पहलेसे अशुद्धि आरम्भ हुई है, परन्तु यदि हम कहें कि "आरम्भ ही अशुद्ध" तो सुननेवालोंको वह आनन्द नहीं प्राप्त हो सकता, जो "बिस्मिल्ला गलत" सुननेसे होता है। हाँ, संस्कृत की कहावत "प्रथमे ग्रासे मक्षिकापातः" इसका मौजूं तर्जुमा है।

(६) विशेषणके विषयमें हिन्दीने कमाल किया है। यह नहीं कि उसने फारसीके विशेषण नहीं लिये, परन्तु कई अरबी फारसीके विशेषणोंको भी भाषाकी प्रकृतिके साँचेमें ढालकर हिन्दी रूप दे दिया। जैसे सादा, खासा, जुदा और ताजा शब्दोंके बहुवचन सादे, खासे, जुदे और ताजे तथा स्त्रीलिंग सादी, खासी, जुदी और ताजी बनाये गये। दिल्लीके खोंचेवालेकी पुकार है :—

कोई कहे बाबू इधरको आओ, देखो चीज क्या खासी।
ताजी लो तो हैगी याँपर और वाँपर है बासी॥

(७) हिन्दीमे क्रियाओकी कमी न थी। पर तो भी फारसीके संसर्गसे हिन्दीने दो तरहसे क्रियाएँ बनायी। एक तो फारसी शब्दोमे "होना" "करना" आदि क्रियाएँ लगाकर नाम द्योतक संयुक्त क्रिया (nominal compounded verb) रूपसे और दूसरे, फारसी मसदरमे या हासिल मसदरमे "ना" प्रत्यय लगाकर नामधातुवत्। पहलेके उदाहरण है, कबूल करना, इनकार करना, सैर करना, इन्तजार करना, पशेमान होना, .खुश होना, नाराज होना, .गुस्सा होना, खफा होना, तङ्ग होना, दिक होना, तमाशा देखना, राह देखना, इत्यादि।

अब दूसरेके उदाहरण लीजिये। देखिये, फारसी मसदरो—क्रियाओसे कैसे हिन्दीमे नयी क्रियाएँ और कहीं-कहीं उनके नये अर्थ आये है।

गुज़िश्तन मसदरसे हिन्दीमे गुजरना क्रिया बनी। इसका अर्थ हुआ बीतना। "गुजरना" निकलना, (to pass) अर्थमे भी आता है। परन्तु हिन्दीमे गुजरना और गुजर जाना क्रियाका अर्थ मर जाना हो गया , जैसे, उन्हे गुजरे आज कई दिन हो गये। इसी अर्थपर किसी शाइरने यह विनोदपूर्ण पद्य कहा है:—

मुझे तो रास्ता चलनेमें भी अब खौफ आता है।
सुना है जबसे मर जानेको भी कहते हैं गुजर जाना।

फर्मूदन मसदरसे हिन्दी क्रिया फर्माना बनी। इसका प्रयोग हिन्दीमे अधिकतर व्यङ्गमे होता है।

कबूलसे कबूलना, शर्मसे शर्माना, बदलसे बदलना इत्यादि क्रियाएँ बन गयीं।

बखशीदन मसदरसे बख्शना क्रिया ही नहीं बनी, परन्तु संस्कृत "दत्त" और हिन्दी "दीन" तथा पञ्जाबी "दित्ता" अर्थमें भी बख्श शब्दका प्रयोग होने लगा, जैसे माताबख्श, गुरबख्श इत्यादि। आगे चलकर यह 'बख्श' बक्स या बकस बन गया और हरीबक्स, देवीबक्स आदिनाम इसके योगसे बने।

रंज फारसीमें दुःखको कहते हैं, परन्तु बिहारके लोग बहुधा नाराज होने या ग़ुस्सा होनेके अर्थमें रंज होना बोलते हैं, जैसे, मेरा तो कोई कसूर नहीं है, आप क्यों रंज होते हैं?

लर्जीदन मसदरसे लर्जाना क्रिया बनी, जिसका अर्थ है काँपना। इसका प्रयोग पद्माकर इस प्रकार करते हैं:—

पात बिन कीन्हे ऐसी भाँत गनबेलिनके
        परत न चीन्हे जे वे लर्जत लुञ्ज हैं।
कहै पद्माकर बिसासी या बसन्तके सु
        ऐसे उत्पात गात गोपिनके भुंज हैं।
ऊधो यह सूधोसो सँदेसो कह दीजो भले
        हरिसों हमारे ह्याँ न फूले बन कुञ्ज हैं।
किंसुक, गुलाब, कचनार औ अनारनकी
        डारन पै डोलत अँगारनके पुञ्ज हैं।

चञ्चला चमाकै चहूँ ओरन ते चाह भरी,
चरज गयीं ती फेरि चरजन लागीं री ।
कहै पद्माकर लवङ्गनकी लोनी लता
लरज गयी ती फेरि लरजन लागी री ।
कैसे धरौ धीर बीर त्रिविध समीरै तन
तरज गयी ती फेरि तर्जन लागी री ।
घुमड़ घमण्ड घटा घनकी घनेरी अवै
गरज गयीं ती फेरि गर्जन लागी री ।*

अब हम अरबी फारसीके कुछ ऐसे शब्द बताते है, जो हिन्दीमे दूध-चीनीकी तरह मिल गये है, पर जिनके अर्थोंमे विभिन्नता है । देखिये :—

फ़ैलसूफ़ यूनानी भाषाका शब्द है, जिसका अर्थ ज्ञानी है, पर उर्दूमे दगाबाज और मक्कारके लिये आता है। अनुमान है कि व्यंग्यमे किसी मक्कारको फैलसूफ कह दिया होगा, इसलिये यह अर्थ हो गया । जैसे किसी अनाचारी को महात्मा कह देते है । हिन्दीमे "उड़ाऊ" अर्थमे भी यह बोला जाता है । जैसे, वह बड़ा फैलसूफ है, इसीसे तो पैसा नहीं टिकता ।

ख़सम अरबीमे प्रतिस्पर्द्धी या शत्रुको कहते है, पर हिन्दी, उर्दूमे वह पति या धनी अर्थमे आता है । जैसे, ओछी पूँजी खसमै

---

* जगद्विनोद, वसन्त और वर्षा-वर्णन

खाय। पतित्व अर्थमे हिन्दी कवितामे खसमाना शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। गङ्गने लिखा है—"करत न कबूल खसमाना जू।"

तमाशा और सैर अरबीमे केवल गति या चालके अर्थमे है, पर हिन्दीमे इनका अर्थ पेखना है। जैसे, चलो बागकी सैर करे। आज वहाँ अच्छा तमाशा है।

खैरात अरबीमे नेकियाँ अर्थ देता है। परन्तु हिन्दी, उर्दूमे दान अर्थमे आता है। जैसे, जब पेट लगा फटने, तब खैरात लगी बटने।

तकरार अरबीमे दोबारा कहने या काम करनेको कहते है। हिन्दी, उर्दूमे बतबढ या झगड़ेके अर्थमे इसका प्रयोग होता है।

तूफान अरबी शब्द है और इफरात या बहुतायतके लिये फारसीमे आता है। हिन्दीमे अन्धड़के लिये बोलते है। उर्दूमे तुहमत या दोष अर्थमे भी आता है।

खफीफ अरबीमे हल्की चीजको कहते हैं। उर्दू हिन्दीमे शर्मिन्दा या लज्जित अर्थमे भी आता है। जैसे, वह मिले तो सही, देखो कैसा खफीफ (शर्मिन्दा) करता हूँ।

मसाला (बहुवचन मसलहत) यह मासलहका संक्षिप्त रूप है। हिन्दी, उर्दूमे गरम मसाला, इमारतके सामान या किसी

और वस्तुके संग्रहको भी कहते है। मसलहत परामर्श अर्थमे आता है।

खातिर अरबी फारसीमे दिल या खयालके मौकेपर बोलते है। उर्दू हिन्दीमे "खातिर जमा रखना" निश्चिन्त रहनेके लिये तो कहते ही है, पर "खातिर" कहा मानने या आदर-सत्कार करनेके लिये भी आता है। जैसे, तुम्हारी खातिर मुझे मंजूर है। जायसी और गो० तुलसीदासने सत्कार करना अर्थमे "मनुहारि" का प्रयोग किया है।

दस्तूरी जिस अर्थमे बोलते है, वह यहींका है।

रोजगार फारसीमे जमानेको कहते है। हिन्दीमे नौकरी या व्यवसायको कहते है। जैसे, 'बिना रोजगार रोज गारी देत घर के लोग।'

जलूस अरबीकी जलस धातुसे बना है, जिसका अर्थ बैठना है। इसीसे मजलिस, जल्सा और इजलास बने। पर हिन्दी, उर्दूमे चलते जल्सेका नाम जुलूस हो गया।

रूमाल जिस अर्थमे यहाँ बोलते है, वह यहीं निकला है। फारसीमे रूपाक या दस्तपाक कहते है।

खैरोसलाह साधारण लोग "ख़ैरसल्लाह" क्षेमकुशल अर्थमे बोलते है। मारवाड़ियोमे सल्लाह शब्द हालके अर्थ मे भी बोलते है। जैसे, के सल्लाह है ? उत्तर—चोखी सल्लाह है।

राज़ीखुशी आनन्दमङ्गल या सही-सलामत अर्थमे लिखते-बोलते हैं। जैसे, हम राज़ीखुशी पहुँच गये; अपनी राज़ीखुशी-का समाचार देना। मारवाड़ी लोग केवल "राज़ी" बोलते है। जैसे, तुम राज़ी हो? सब लोग राज़ी हैं?

कुछ शब्द रूपान्तरित हुए हैं, पर इनके अर्थोंमे अन्तर नही पड़ा। जैसे :—

पजावा—ईंटोका भट्ठा। फारसी पज़ीदन मसदरसे पज़ावह बना है।

टाटबाफ़ी तारवाफीका बिगड़ा रूप है। इसका अर्थ ज़रीदार जूता है।

ज़री कोना और **तारतल्ला** भी ज़रीदार जूता ही कहाता है।

बकबक झकझक फारसीमे ज़कज़क बकबक है।

गुदड़ी-गुजरी शामके वक़्के बाजारको कहते हैं।

अफरातफरी इफरात और तफरीतसे बना है। असलमे निहायत, बहुतायत और निहायत कमीके अर्थ हैं। पर अब हलचल या बेचैनी अर्थमे आता है। जैसे, अफरातफरी पड गयी है।

कुलाँच या कुलाच तुर्की भाषामे दोनो हाथोके बीचकी जगहको कहते है। इसलिये यह कपड़ा नापनेका गज़ है। यहाँ

हिरन, ख़रगोश वग़ैरह जानवरोंके दौड़नेको कुलॉच भरना कहते है।

वहशीको हमने देखा उस आहू* निगाहसे।

जङ्गलमें भर रहा था कुलाँचें हिरनके साथ ॥ (ज़ौक़)

मुर्ग़ा, फारसीमे मुर्ग केवल पत्नी है। हिन्दीमे मुर्ग़ा कुक्कुटको कहते है और मुर्गी इसकी मादा है। मुर्गोंकी लड़ाई होती है और बड़े शौकसे लोग इसे देखते है। मुर्गबाज़ी एक व्यसन है।

चिक,—चिक या चिग़ तुर्की भाषामे बारीक पर्देको कहते है। यहॉ चिलमनको चिक कहते है।

कत्ता तुर्कीमे बड़ेको कहते है। यहॉ मोटेको कहते है। हट्टाकट्टा बोलनेका मुहावरा है।

नज़र दृष्टि अर्थमे आता है। जैसे :—

सब कुछ इसीमें है पर चाहिये नज़र (नज़ीर)

नज़र आना=दिखना। जैसे :—

भॉग जब चढती है, क्या ही मज़ा दिखाती है।

मक्खियॉ उड़ती हैं और ईट नज़र आती है ॥

हाथीसा ज्वान भुनगा नज़र आवे।

नज़र लगना, कुदृष्टि लगना है

नजर, नजराना भेटको भी कहते है।

---

* हिरन

खत चिट्ठीके अर्थमे आता है। जैसे, खत-किताबत (चिट्ठी-चपाती) बन्द है। दाढ़ी अर्थमे भी इसका प्रयोग होता है। जैसे, ख़त बनवा लो।

सफाई उड़ गयी चेहरेकी जब ख़तका निकाल आया।
कहाँ रहती है वह कीमत कि जब चीनीमें बाल आया॥

नशा मादकताको कहते है।

मज़ा आनन्द है।

जबानी चिट्ठी लिखनेके साथ चिट्ठी ले जानेवालेसे कुछ जबानी भी कहलानेकी चाल थी। फारसी न जाननेवाले इसे "मुँह-जबानी" भी कहते है। उसका हिन्दी नाम मुखाग्र या मुखागर है।

तुलसीदासजीने लङ्का-काण्डमे लिखा है—"कहेउ मुखागर मूढ़ सुन।"

सानी अरबी शब्द है, जिसका अर्थ द्वितीय है। अद्वितीय अर्थमे लासानी बोलते है। सीतल कविने सानी शब्दका भी प्रयोग किया है। जैसे—

बरनन करनेको क्या बरनूँ बरनूँगा जेती बानी है।
यह तीन उच्चके पड़े हुए जानी यह यूसुफ सानी है॥

सानी शब्द जो हिन्दीका है, उसका अर्थ मिला हुआ चारा है, जैसे गायकी सानी।

निवाज़िश फारसीमे कृपा और **निवाज़** कृपालुको कहते है। तुलसीदास आदिने "ग़रीब नेवाज" शब्दका प्रयोग किया है। पर किसी-किसीने नेवाजना क्रिया भी बना ली है। जैसे,

> द्वार धनीके पडि रहै धका धनीके खाय।
> कबहूँ धनी नेवाजही जो दर छॉड़ि न जाय॥

जायजरूर जाजरूर या पायखाना हिन्दीमे कहते है। एक कविने किसी अनुदार धनीको टटोलकर जब मूजी पाया, तब एक कवित्त बनाया, जिसका अन्तिम चरण है—"आये ते दुवारे छोट ना जान्यो तुम, लागत जरूर तब जाजरूर जाइत है।"

"ऐन निवाजि़श है" उर्दूमे आम तौरसे बोलते है। बहुतसे अरबी फारसीके शब्दोकी प्रकृतिके अनुकूल हिन्दुस्थानका जल-वायु न हुआ, इसलिये वे पिछले पैरो लौट गये। नवाब बादशाहोने हिन्दुस्थानमे कितने ही हिन्दी और फारसी शब्दोका संस्कार किया और किसीका नया नाम रखा। घोडेका रङ्ग जिसे हिन्दुस्थानमे सुरङ्ग कहते है, फारसीमे कुरङ्ग कहाता है। पर हिन्दीमे "कु" का अर्थ बुरा है, इसलिये अकबरने इसका नाम सुरङ्ग रखा। घोड़ेकी ऑखोपर जो अँधेरी बॉधी जाती है, उसका नाम "उजियाली" रखा। भङ्गीको हलालखोरका ख़िताब भी इसी बादशाहने बख़्शा है।

इसी तरह जहॉगीरने शराबका नाम रामरङ्गी और मुहम्मद-शाहने सङ्गतरहका नाम रङ्गतरह और बुलबुलका गुलदुम नाम

रखा। हार (हरण करना) असगुन समझकर उसका नाम फुलमाल रखा गया। शाह आलमने सुरख़ाबको गुलसिर्रा कहा, परन्तु इसका प्रचार नहीं हुआ। सुरख़ाब चकवेका नाम है। सुरखाब का पर खोसना या लगाना बड़ी योग्यताका चिन्ह समझा जाता है।

इसी प्रकार लखनऊके नवाब सआदतअलीखाँने मलाईका नाम बालाई रखा, परन्तु दिल्लीकी ओर यह प्रचलित नहीं हुआ।

किसी भाषाके शब्द ले लेनेकी चाल तो संसार भरमें है, पर मुहावरे लेनेकी नहीं है। हिन्दीने इस विषयमें यह नियम भी तोड़ दिया है और उर्दू शाइरोंने तो मुहावरोंका तर्जुमा कर लिया है।

आबशुदन पानी होना फारसीका मुहावरा है। हिन्दीमें बोलते है, वह पानी-पानी हो गया।

> आग दोज़खकी भी हो जायगी पानी पानी।
> जब यह आसी[1] अर्क़ शरममें तर जायँगे॥ (ज़ौक़)

हर्फ आमदन लाञ्छन लगना और **दिल खून शुदन** दिल खून होना।

> हर्फ आये मुझपे देखिये किसके-किसके नामसे।
> इस दर्दसे अफ़ीफका[2] दिल ख़ूने यमनमें है॥

१—पापी। २—संयमी, परहेज़गार।

पैमाना पुरकर्दन मार डालना—

साकी चमनमें छोड़के मुझको किधर चला।
पैमाना मेरी उम्रका ज़ालिम तू भर चला ॥

अजजामा बिरूँ शुदन जामेसे बाहर होना।

निकला पड़े है जामेसे कुछ इन दिनों रकीब[3]।
थोड़े ही दम दिलासेमें इतना अफर चला ॥ (सौदा)

बे आब मोज़ा कशीदन बिना पानी मोज़े उतारना। पानीमे उतरना हो तो मोजे उतारना चाहिये। अकारण क्रुद्ध होनेको कहते है।

दिल दादन दिल देना, आसक्त होना।

दिल देके जान पै अपनी बुरी बनी।
शीरीं कलामी आपको मीठी छुरी बनी ॥ (जफर)

अजजान गुजश्तन जानपर खेल जाना।

वहाँ जाये वही जो जानसे जाये गुजर पहले। (जफर)

जमीन आस्मानके कुलाबे मिलाना आकाश-पाताल एक करना।

कुलाबे आस्माँ व ज़मीके न तू मिला।
उस बुतसे कोई मिलनेकी नासह बता सलाह ॥ (ज़ौक)

बाज आना छोड़ बैठना या हाथ उठा लेना।

३—यार या आशिक

मैं बाज़ आयी दिलके लगानेसे।

बलि-बलि आयी बाज मौन याहीते ठान्यो। (गिरिधर)

(८) हिन्दी वाक्य-रचनाका साधारण नियम है कि वाक्य-मे पहले कर्त्ता, फिर क्रिया और अन्तमे कर्म रहे और यदि अन्य कारक हो, तो बीचमे रखे जायँ। परन्तु फारसीमे यह बात नहीं है और फारसी ढङ्गके वाक्योंकी हिन्दीमे भरमार हो रही है। उदाहरणार्थ—(१) न सिर्फ़ आप आवें, बल्कि अपने दोस्तोको भी लावें। (२) बावजूद इसके कि मै था, मुझे इत्तिला न दी गयी। इस प्रकारके वाक्योका कुछ कारण है और वह यह कि पहले पहल मुसलमानोने ही हिन्दी गद्यकी रचना की और उनकी लेखन-शैली वा वाक्य-रचना प्रणाली फारसी ढङ्गकी थी। उनका ही अनुकरण अन्य लेखकोंने किया और इस प्रकार फारसी ढङ्गकी हिन्दीकी नींव पड़ी। सैयद इनशाअल्लाखॉने अपनी "रानी केतकी की कहानी" की भूमिकामे लिखा है :—

"सिर झुकाकर नाक रगड़ता हूँ अपने उस बनानेवालेके सामने जिसने हम सबको बनाया... ।"

राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्दने इसी भाषाका अनुकरण किया और लिखा :—

"कुछ अहवाल अपने बुजुर्गोंका ।"

राजा साहब तो हिन्दुस्तानीके हामी थे, इसलिये उन्होने इस ढङ्गका वाक्य लिखा, तो क्षन्तव्य है; परन्तु उन्हे क्या कहा जाय, जो हिन्दीके तरफ़दार है और ठेकेदार है, फिर भी वाक्य

वैसा ही लिखते है । कई साल पहले प्रकाशित "हिन्दी साहित्यका इतिहास" नामक ग्रन्थके लेखकने अपनी भूमिकामे यह वाक्य लिखा है :—

"अत्यन्त श्रद्धा और आदरके साथ मै आभारी हूँ रायबहादुर श्रीयुक्त माननीय पण्डित श्यामबिहारी मिश्र, दीवान ओड़छा राज्यका......।"

निश्चय ही यह वाक्य-रचना हिन्दीकी तो कही ही नहीं जा सकती, फिर भी आश्चर्य यह है कि इस अवतरणमे अरबी, फारसीके शब्दकी गन्ध तक नहीं है ।

———

उपसंहार

इस विवेचनको समाप्त करनेके पहले यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि कोई तीन सौ और इनसे भी ज्यादा सालो से उर्दू हिन्दुस्तानी मुसलमानोकी बोलचाल और साहित्यकी भाषा रही है, परन्तु हिन्दीने अपने साहित्यिक जीवनके अभी तक दो सौ वर्ष भी समाप्त नही किये। यह सच है कि हिन्दी, उर्दूके पहलेसे ही बोलचालकी भाषा रही है, परन्तु वह बहुत थोड़े लोगोकी बोली थी और उर्दूसे उसको बड़ा सहारा मिला। जो भाषा बहुत अधिक लोग बोलते है, उसीमे परिवर्त्तन भी अधिक होते है, इसलिये उर्दूमे समय-समय शब्दोके रूपोमे जो परिवर्त्तन हुए, वे हिन्दीमे भी ले लिये गये। जैसे पहले "सब" सर्वनामके बहुवचनका सामान्य रूप "सबो" बनता था। उर्दूवालोने "सब" मे बहुवचनके लिये "ओ" लगानेकी आवश्यकता नही समझी और दोनो बचनोमे "सब" का ही सामान्य रूपमे प्रयोग प्रारम्भ किया। अब कोई "सबो" लिखता है, तो हिन्दीवाले ही उसे गँवार समझते है। इसी तरह "जिन्हो" "जो" सर्वनामके बहुवचनका सामान्य रूप था। उर्दूके नामी शाइरोने भी "जिन्होके," "जिन्होकी" जैसे पद लिखे है। (देखिये पृष्ठ १२०–१२१) परन्तु बादको उर्दूने उन्हे अशोभन समझ

कर त्याग दिया और हिन्दीने भी उसका अनुकरण किया। अब वह केवल तीसरी विभक्तिके बहुवचनके सामान्य रूपमे दिखाई देता है। यही हाल "जो" शब्दके बहुबचनके सामान्य रूप "जिन" का है। दूसरीसे पाँचवी विभक्तितक तथा सम्बन्ध-वाचक प्रत्यय "का" के पहले "जिन" सामान्य रूप होता था। पर अब तीसरी विभक्तिके बहुवचनको छोड़ सर्वत्र "जिन" सामान्य रूप माना जाता है, परन्तु तीसरी विभक्तिमे "जिन्हो" ही सामान्य रूप होता है। पहले उर्दू शाइरोने तीसरी विभक्तिमे "जिनने" लिखा है, जैसे "जिनने देखे तेरे लबे शीरीं, नहि उनकी निगाह शकरकी तरफ।" परन्तु अब तो राजपुताने और मध्य-भारतके बाहर इन प्रयोगोंके बोलनेवाले हिन्दीमे ही नहीं मिलते, उर्दूका तो कहना ही क्या है ?

"से" के बदले "सो" वलीने ही लिखा है। "तलक" सम्बन्ध-वाचक अव्ययका प्रयोग "तक" के लिये होता था, "आकर" के लिये "आनकर" लिखा जाता था। और तो क्या, शम्शुल-उलेमा मौलाना मुहम्मद हुसेन साहब "आजाद" मरहूमने भी लिखा है:—

> किस्मतमें जो लिखा था सो देखा है अब तलक।
> और आगे देखिये अभी क्या-क्या हैं देखते॥

"आता हे", "करता था" आदि धातुरूपोका प्रयोग उर्दूके लेखकोकी कृपासे हो रहा है। पहले "आये है", "करे था" प्रयोग प्रचलित थे। मीरने भी लिखा है:—

नामा जो वहाँ से आये है सो तीरमें बँधा ।
क्या दीजिये जवाब अजलके पयामका ॥

सौदाने लिखा है :—

क्या इसको गोश करे था जहाँ अहले कमाल ।
यह सङ्गरेज़ हुआ हूरे अदन मुझसे ॥

आजकल "सो"के बदले हिन्दीवाले बहुधा "वह" ही लिखते है ।

उर्दू शाइरो और लेखकोने भाषामे जो तराश-खराश की है, उससे उसमे बहुत सुघड़पन आ गया है। इसके लिये हमे उनका कृतज्ञ होना चाहिये । साधारण शब्दोमे लिखी हुई उर्दू कविता कैसे चित्तको आकर्षित करती है, परन्तु वे ही शब्द हिन्दी कविता-को क्यों मनमोहिनो नही बनाते, यह क्या विचारणीय नही है ? अवश्य ही पहलेसे अब हिन्दी कवितामे भी अधिक सजीवता देखी जाती है, तथापि अब भी उसमे कसर है । इसका कारण क्या है ? इसका कारण यही है कि जिस भाषामे उर्दू कविता होती है, वह कविके नित्य व्यवहारकी भाषा है, परन्तु हिन्दी कवि अपने घरमे और कभी-कभी बाहर भी जो भाषा बोलता है, वह वर्तमान कविताकी भाषा अर्थात् हिन्दी-खरी बोलीसे भिन्न होती है । यही कारण है कि सदल मिश्रजीके "नासिकेतोपाख्यान" और लल्लूलालजीके "प्रेमसागर"की भाषा सैयद इनशाअल्लाखॉकी "रानी केतकीकी कहानी"की भाषाका मुकाबिला नही कर सकी ।

हिन्दी लेखनकलाके विद्यार्थियोको कुछ उर्दू अवश्य सीखनी चाहिये, क्योकि इसके विना उन्हे शब्दोके और अर्थोके परिवर्त्तनो-का ज्ञान नही हो सकता। मॅजी हुई भाषा लिखना और बोलना दो ही तरहसे आता है, या तो वह लेखक या वक्ताके नित्य व्यवहारकी भाषा हो या लेखक बननेका प्रयासी भाषा-विद् गुरुओकी सङ्गत करे। उर्दूके नामी शाइरोमे सबके उस्ताद थे। इसके सिवा सुसङ्गतसे लाभ उठानेमे वे कभी पश्चात्पद नही होते थे। दिल्ली और लखनऊके शाइरों और लेखकोमे जो अन्तर है, वह निराधार नही है। वे नये रूप, नये अर्थ और नये मुहावरे निकालते है और कभी-कभी विपक्षी उन्हे स्वीकार करते है। हिन्दी शब्दोके इतिहासका ज्ञान उर्दू शब्दोके इतिहासके जाने विना नही हो सकता।

शुद्धिपत्र

अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध
२१ अ	३	२१	२१॥ अ० २
शायरोंने	३	१३	शाइरोंने
फारसीपर	५	१२	फ़ारसीपर
फारसी	,,	१५	फ़ारसी
अफयून	७	१६	अफ़्यून
केशसू	,,	२२	केश
१—हिन्दी	६	१४	हिन्दी
हन्दीसे	१३	२०	हिन्दीसे
वया	१८	४	बयण
खुसरोके	२८	३	ख़ुसरोके
न	३४	६	नो
characterestice	४१	२२	characteristics
मुल्कोंसे	४६	४	मुल्क़ोंसे
ओल	४८	१५	ओलै
कुव्वत	५३	७	क़ुव्वत
वुताका	५८	४	बुतोंका
उदूने	५६	५	उर्दूने
फलक	६२	१६	फ़लक

अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध
राज	६३	१७	रोज़े
बेवख्शद	,,	१८	बेवख्शद
जाहिदा	६६	८	ज़ाहिदो
होगी	,,	१६	पी होगी
वहिश्त	६८	१०	बिहिश्त
उसे	८४	१७	इसे
कैद	८५	६	क़ैद
देखिए	८७	१२	देखिये
carnwallis	८८	२१	Cornwallis
अजनवी	९०	१६	अजनबी
साहित्य-रचना	९२	५	साहित्यका रचना
दखल	१०३	२	दख़ल
वसूलसे	१०५	११	उसूलसे
कविताकी	१०७	२१	कविता की
ज्यादा	११७	८	ज़्यादा
कलिया	११८	१३	क़लिया
"ध्यान आकर्षित कर"	१२१	१९	ध्यान आकर्षित कर
Compounded	१२५	४	Compound
अदिनाम	१२६	७	आदि नाम
समय समय ,	१३८	१०	समय समयपर